VISHWA - Hindi Literary Magazine

PRINTED VISHWA - ISSN 25721550
ONLINE e-VISHWA - ISSN 25721569

अंतर्राष्ट्रीय हिन्दी समिति
International Hindi Association

JANUARY 2026

विश्वा

अंतर्राष्ट्रीय हिन्दी समिति की त्रैमासिक मुख पत्रिका

वर्ष 42 ◆ अंक 1 ◆ जनवरी 2026

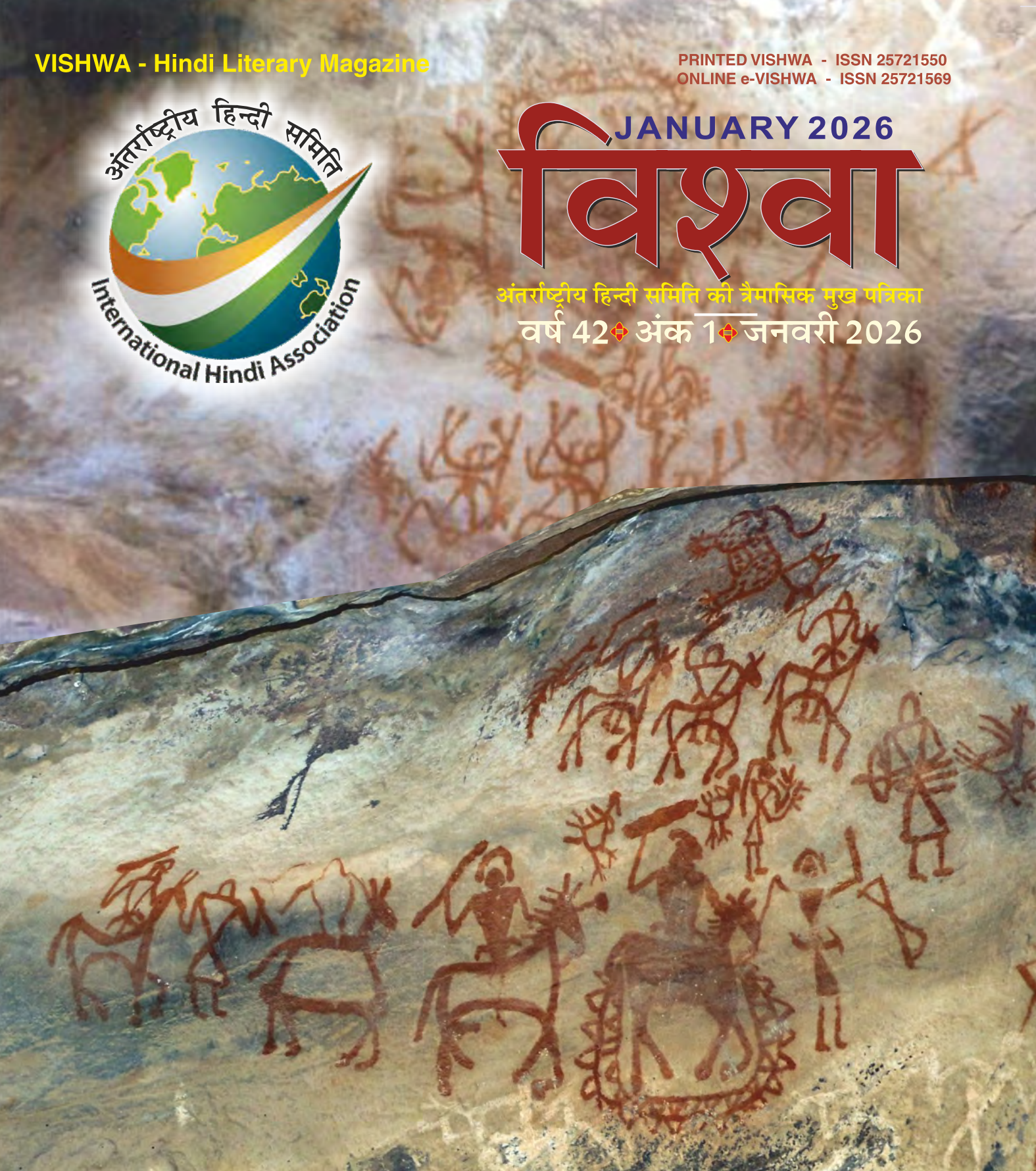

www.hindi.org Year 42 Volume 1 A Lingo-Cultural Hindi quarterly Published by International Hindi Association January 2026

अंतर्राष्ट्रीय हिन्दी समिति के नव निर्वाचित कार्याधिकारी (2026-27)

श्री संजीव जायसवाल (TX)
अध्यक्ष

श्री उमेश कुमार (TN)
सचिव

श्री चन्द्रकांत पटेल (TX)
कोषाध्यक्ष

नव निर्वाचित शाखा-संयोजक (2026-27)

सुश्री प्रिया भारद्वाज
शार्लेट शाखा

श्री आदित्य शाही
इन्डिआना शाखा

डॉ. राकेश रंजन
उत्तर-पूर्व ओहायो शाखा

अंतर्राष्ट्रीय हिन्दी समिति की त्रैमासिक मुख पत्रिका

विश्वा

प्रकाशन त्रैमासिक – जनवरी, अप्रैल, जुलाई, अक्टूबर
Published Quarterly – January, April, July, October

प्रबन्ध सम्पादक - **श्री आलोक मिश्रा**
Managing Editor - **Mr. Alok Misra**
New Hampshire, U.S.A.
ई-मेल - alok.misra@hindi.org
दूरभाष - 603-681-9150

रमेश जोशी, प्रधान सम्पादक
Mr. Ramesh Joshi, Chief Editor
Email – joshikavirai@gmail.com
editor@hindi.org

श्रीमती अर्चना पांडा, डिजीटल मीडिया एडिटर
Mrs. Archana Panda, Digital Media Editor
Email – panda_archana@yahoo.com

भारती मिश्र, संकलन, संपादन सहयोग
Bhati Mishra, Collection, Co-editor
Email – batua896@gmail.com

यदि आप चाहते हैं कि आपके मित्रगण भी विश्वा पढ़ें, विश्वा से जुड़ें तो हमें उनका ई मेल का पता उपलब्ध करवा दें जिससे हम उन्हें विश्वा की पीडीएफ़ भिजवा सकें। संपर्क – mail@hindi.org

विश्वा के लेखकों से

1. एक बार में दो से ज्यादा प्रविष्टियाँ न भेजें।
2. रचनाओं में एक पक्षीय, कट्टरतावादी, अवैज्ञानिक, साम्प्रदायिक, रंग-नस्लभेदी, अतार्किक, अन्धविश्वासी, अफवाही और प्रचारात्मक सामग्री से परहेज करें। सर्वसमावेशी और वैश्विक मानवीय दृष्टि अपनाएँ।
3. अपनी रचना की प्रूफ रीडिंग करके भेजें। वर्तनी (Spelling) के लिए हम जिम्मेदार नहीं होंगे। इससे रचना की गुणवत्ता भी संदेहास्पद हो जाती है।
4. रचना एरियल यूनिकोड MS या मंगल फॉण्ट (12) में भेजें।
5. पेज पर सिर्फ रचना का नाम और रचना ही लिखें। रचना छपने लायक फॉर्मेट में भेजें।
6. रचनाएँ एक से अधिक हों तो अलग-अलग word और pdf document में भेजें।
7. अपने बायो डेटा में डाक का पता, ईमेल, फोन नंबर ज़रूर भेजें। हाँ, ये सूचनाएँ उतनी ही छापी जायेंगी जितना आप चाहेंगे लेकिन हमारी जानकारी के लिए ये आवश्यक हैं। यदि आपकी पुस्तकें प्रकाशित हैं तो उनका विधा सहित उल्लेख भी करें। अपने बायोडाटा को word और pdf document में भेजें।
8. अपनी पासपोर्ट साइज़ तस्वीर अलग से भेजें। रचना के साथ अप्रकाशित और मौलिक होने का प्रमाणपत्र भी संलग्न करें।
9. रपट, रचना, समाचार के साथ के फोटो 250px तक होनी चाहिए।
10. 'विश्वा' के लिए भेजी गई रचना दो महिने तक कहीं न भेजें।
11. इंटरनेट की सुविधा का दुरुपयोग करते हुए एक ही रचना पचासों पत्रिकाओं में भेजकर अपनी और हमारी प्रतिबद्धता को सस्ता न बनाएँ।
12. प्रवासी अपने यहाँ की किसी व्यक्तिगत उपलब्धि तथा सांस्कृतिक, साहित्यिक और सामाजिक हलचलों की सचित्र-प्रामाणिक जानकारियाँ उचित तरीके से भेज सकते हैं।
13. यदि छंद का ज्ञान नहीं है तो कोई बात नहीं लेकिन यदि छंद में लिखें तो उसके अनुशासन का पूरा पालन करें।
14. हिन्दी से इतर भाषाओं के जीवन मूल्यों और मानवीय गरिमा से संपन्न रचनाओं का अनुवाद भी भेज सकते हैं। ऐसे में जहाँ मूल लेखक से अनुमति आवश्यक हो तो वह भी संलग्न करें।
15. पुस्तक की समीक्षा के लिए दो प्रतियाँ भेजें। हस्तलिखित, स्केनिंग और पीडीएफ़ वाली सामग्री का उपयोग हम नहीं कर सकेंगे।
16. किसी भी रचना पर किसी प्रकार के मानदेय का कोई प्रावधान नहीं है।

रचनाओं में व्यक्त विचार लेखकों के अपने हैं। उनका अंतर्राष्ट्रीय हिन्दी समिति की रीति-नीति से कोई संबंध नहीं है।

अंतर्राष्ट्रीय हिन्दी समिति
International Hindi Association

संस्थापक – डॉ. कुँवर चंद्रप्रकाश सिंह
Founder – Dr. Kunwar Chandraprakash Singh

बोर्ड के सदस्य / Board of Trustees

श्री तरुण सुरती (TN) अध्यक्ष, न्यासी समिति
Mr. Tarun Surti, Chairman 615-812-6164 tarunsurti@yahoo.com

श्री आलोक मिश्र (NH)
Mr. Alok Misra 603-681-9150 alok.iha@gmail.com

डॉ. रवि प्रकाश सिंह (TN)
Dr. Ravi Prakash Singh 615-785-7888 ngdsdg@gmail.com

श्री स्वप्न धैर्यवान (TX)
Mr. Swapan Dhairyawan 281-382-0348 swapandha@yahoo.com

श्री इंद्रजीत शर्मा (NY)
Mr. Inderjeet Sharma 917-273-9744 guru.richmondhill@gmail.com

कार्याधिकारी / Executive Officers

श्री संजीव जायसवाल (TX) अध्यक्ष
Mr. Sanjeev Jaiswal, President 508-369-7639 president@hindi.org

श्री उमेश कुमार सचिव
Mr. Umesh Kumar (TN) Secretary 615-870-7088 secretary@hindi.org

श्री चन्द्रकांत पटेल (TX) कोषाध्यक्ष
Mr. Chandrakant Patel, Treasurer 832-423-7979 treasurer@hindi.org

कार्यकारी समितियाँ Committees Chairs

प्रौद्योगिकी / Technology

श्री उमेश कुमार सचिव
Mr. Umesh Kumar (TN) Secretary 615-870-7088 umeshkharwar79@gmail.com

हिन्दी शिक्षण / Hindi Education

श्रीमती किरण खेतान
Mrs. Kiran Khaitan (OH) 330-622-1377 kirankhaitan@yahoo.com

निधि संग्रह / Fundraising

डॉ. शोभा खंडेलवाल
Dr. Shobha Khandelwal (OH) 330-421-6638 shobhakhandelwal@gmail.com

शाखा समन्वय / Chapter coordination

श्रीमती अनीता सिंघल
Mrs. Anita Singhal (TX) 817-319-2678 anitagsinghal@gmail.com

सदस्यता / Membership

चौधरी प्रताप सिंह
Choudhari Pratap Singh (MD) 202-413-5918 chpratapsingh1008@gmail.com

विश्वा / श्री रमेश जोशी
Vishwa / Mr. Ramesh Joshi (India) 91-94601-55700 joshikavirai@gmail.com

संवाद / डॉ. शैल जैन
Samvad Newsletter / Dr. Shail Jain 330-421-7528 shailj53@hotmail.com

शाखा संयोजक, Chapter Presidents USA

डॉ. राकेश रंजन
Dr. Rakesh Ranjan NE Ohio 216-870-4375 rranjan@charakresearch.com

श्रीमती वीणा शर्मा
Mrs. Veena Sharma Dallas, TX 214-455-6592 mohan_veena@yahoo.com

श्री सौंदर्य (संजय) सोहोनी
Mr. Saundarya Sohoni Houston 281-943-9758 saundaryasohoni@gmail.com

श्रीमती कमला पंचाल
Mrs. Kamla Panchal New York, NY 516-279-6612 kamlapanchal@aol.com

सुश्री सीमा वर्मा
Ms Seema Verma Nashville, TN 904-525-1795 call.seema@gmail.com

चौधरी प्रताप सिंह
Choudhary Pratap Singh MD 202-413-5918 chpratapsingh1008@gmail.com

डॉ. बबिता श्रीवास्तव
Dr. Babita Srivastava New Jersey, NJ 908-892-6133srivastava.babita@yahoo.com

श्री विरेश सिंह
Mr. Viresh Singh Philadelphia, PA 484-425-7734 vireshsingh999@gmail.com

श्री आदित्य शाही
Mr. Aditya Shahi Indiana 818-359-9234 ihaindiana@gmail.com

सुश्री प्रिया भारद्वाज
Ms. Priya Bhardwaj Charlotte 919-995-2637 bharadwajpriya166@gmail.com

शाखा संयोजक, Chapter Presidents India

श्रीमती मुन्ना जगेतिया Hyderabad
Mrs. Munna Jagetia A.P., Telangana 91-94901-89715 munnaop@gmail.com

डॉ. मनमोहन शुक्ला
Dr. Manmohan Shukla Prayagraj, UP 91-83407-10237 shukla.mm.147@gmail.com

डॉ. शोभारानी सिंह Bihar
Dr. Shobharani Singh Jharkhand 91-99393-92605 drshobharani.vama@gmail.com

श्री अशोक लव
Mr. Ashok 'Lav' Delhi, NCR 91-89206-08821 kumar1641@gmail.com

डॉ.(प्रो.) ओम प्रकाश तिवारी
Dr. (Prof.) Om Prakash Tiwari Maharastra 91-96511-23803 optiwari9651@gmail.com

मुद्रण एवं प्रस्तुति :
अनुज्ञा बुक्स
(पुस्तक प्रकाशक, विक्रेता और मुद्रक)
1/10206, LANE NO. 1E, WEST GORAKH PARK, SHAHDARA, DELHI-110032
CELL/WhatsApp 07291920186, 09350809192 • e-mail: anuugyabooks@gmail.com
salesanuugyabooks@gmail.com • www: anuugyabooks.com

अनुक्रम

1. सम्पादकीय	सृष्टि ही लोकतंत्र है *–रमेश जोशी*	 5
2. विशिष्ट आलेख	भाषा, साहित्य और देश *–आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी*	 6
3. विशिष्ट शृंखला : ज्ञानपीठ पुरस्कार 1984	तकषी शिवशंकर पिल्लै *–डॉ. दीपक पाण्डेय*	 10
4. भारत की खोज : चार	पंडित नेहरू : अनुवाद/संक्षेपण – *डॉ. निर्मला जैन*	 12
	महावीर और बुद्ध-वर्ण व्यवस्था, बुद्ध की शिक्षा	 12
	बुद्ध-कथा, चंद्रगुप्त और चाणक्य – मौर्य साम्राज्य की स्थापना, अशोक	 14
5. भारतीय इतिहास की विस्मृत नायिकाएँ	बीबी आयशा *–पूर्वा भारद्वाज*	 16
6. वातायन : हंगेरियन कहानी	मुझे तुम पर यकीन था *–हंगेरियन से अनुवाद इन्दुकांत आँगिरस*	 18
7. जन्म शताब्दी स्मरण (1926-2013)	सिकन्दर और कौआ *–विजयदान देथा 'बिज्जी'*	 22
8. किताबें - 1	अंडमान निकोबार द्वीप समूह की जीवंत यादों पर 'दस डिग्री चैनल' समीक्षक : *रमेश जोशी*	 26
9. किताबें - 2	भारतीय संविधान : जनता का संविधान –समीक्षक : *डॉ. अरुण कुमार त्रिपाठी*	29
	बड़े लोग : बड़े विचार *–बैरन डी मॉन्टेस्क्यू*	 30
10. सरोकार	सुविधा की कीमत *–डॉ. दुर्गाप्रसाद अग्रवाल*	 31
11. वातायन	एक सीरियाई कविता *–निज़ार कब्बानी* अनुवाद : *प्रो. दीपक वोहरा*	 34
12. शोध पर शोध	हिन्दी में शोध का धंधा *–डॉ. अमरनाथ*	 36
13. प्रासंगिक	फ्रांज़ काफ्का के उपन्यास 'द ट्रायल' का सारांश	 39
14. नींव के पत्थर	राधामोहन गोकुल *–कृष्णप्रताप सिंह*	 40
15. विचारणीय	हिन्दी-उर्दू विवाद का सच *–सुधांशु वाजपेयी*	 42
16. विचार	सवाल से भागने का सवाल *–धर्मेन्द्र आज़ाद*	 43
17. मज़े मज़े में	कुत्ते *–पतरस बुखारी* उर्दू से अनुवाद : *मुशर्रफ अली*	 44
18. स्मरण	विनोद कुमार शुक्ल *–प्रियदर्शन*	 46
19. लघु कथा	चार लघु कथाएँ *–सहादत हसन मंटो*	 47
20. नोबल 2025	भौतिकी, केमिस्ट्री, साहित्य, अर्थशास्त्र, चिकित्साशास्त्र	 48

गीत / ग़ज़ल / कविता

प्रस्थान की कविता – *राकेश अचल* / 15; *देवी प्रसाद मिश्र* की दो कविताएँ / 32; अनुत्तरित प्रश्न *–सुशीला टाकभौरे* / 33; *ओमसिंह अशफाक़* की पाँच कविताएँ / 35; *जेसिन्टा* की एक कविता / 35; *जयपाल सिंह* की दो कविताएँ / 38

विविध :	पढ़ते पढ़ाते	 17
	विश्वा के वर्ष 2025 में बने नए आजीवन सदस्य : स्वागत !	 28
	श्रद्धांजलि	 33
	अंतर्राष्ट्रीय हिन्दी समिति के लिए कुछ विशिष्ट पल	 38
	बधाई	 45
	वे दिन : वे लोग	 47
	प्रेरक	 48
	इस अंक का मुखपृष्ठ	 48

अंतर्राष्ट्रीय हिन्दी समिति

International Hindi Association

A 501(c)(3) Non-profit Organization ● 2129 Stratford Road, Murfreesboro, TN 37129, U.S.A. ● Founded in 1980
www.hindi.org

MEMBERSHIP FORM

Please fill out all questions on the form clearly, sign, and return it via email to: **treasurer@hindi.org**, or via mail to: Treasurer, 5907 Majestic Pines Dr, Kingwood, TX 77345, USA. You may print the form, sign, and email a camera image.

Membership fee is nonrefundable. Associate Life members enjoy same benefits as regular Life members, except for voting rights. All members get: 1) Digital Vishwa magazine quarterly, and Samvad newsletter monthly. 2) Discounts on IHA products, services, and events. 3) Volunteer opportunities in US and India. 4) Early notifications.

Title: ☐Mr. ☐Mrs. ☐Ms. ☐Dr. ☐Prof. **Date:** _____

First Name: _____ **Last Name:** _____

Email ID: _____ **Mobile Number:** _____

Street Address: _____

City: _____ **State:** _____

Postal Code: _____ **Country:** _____

Spouse's Name: (optional) ……..……..

Membership: Select one

☐ Life Member $250 USD ☐ Associate Life Member $150 USD

☐ Annual Member $35 USD ☐ Institutional Annual Member $75 USD

Please make check payable to 'International Hindi Association' in USD and mail to above-mentioned address. *Or* ***Pay Online***

Do you wish to receive paper copy of Vishwa magazine, please check here: ☐

There could be a (USD $15/year) printing & mailing charge in the future.

Specimen Signature:
Print or Insert photo of your Signature

Would you like to be a part of the Leadership Team and volunteer in your area of interest or expertise ?

(Check all that apply)

☐ Hindi/English Content Writing
☐ Information Technology, Website
☐ Social media, Digital Marketing
☐ Fundraising, Sponsorships
☐ Public/Government Relations
☐ Hindi Education
☐ Graphics, Video
☐ Organization
☐ Legal, Compliance
☐ Sales, Support
☐ Other (please specify): _____

'Vishwa' welcomes original writings in Hindi from all quarters. Writings dealing with immigrant experiences are especially welcome. For further information, or to submit your writings for consideration, please contact: The Editor, Mr. Ramesh Joshi, Phone USA +1 (330) 688-4927, India +91 94601 55700; Email: joshikavirai@gmail.com or editor@hindi.org

Should this information change in the future, please contact us to update. All your information is kept confidential.
International Hindi Association is a non-political, non-religious, lingo-cultural organization. Jan 2024

सम्पादकीय

सृष्टि ही लोकतंत्र है

ऐसा कैसे हो सकता है? जल-थल-आकाश सृष्टि तो सर्वत्र है लेकिन कहीं भी चुनाव होते नहीं दिखाई देते। बैलट पेपर या ई वी एम या ध्वनि मत से। कहीं कोई ब्लेक या व्हाइट हाउस नहीं, कहीं कोई सेंट्रल विष्ठा नहीं, कहीं पोस्टर बैनर, होर्डिंग नहीं; रोड शो जलसे-जुलूस नहीं, कहीं गाली गलौज नहीं, कहीं घटिया आरोप-प्रत्यारोप नहीं।कहीं संसद से सदस्यों का बहिर्गमन या निष्कासन नहीं, कहीं आवश्यक मुद्दों से कन्नी काटना और अनावश्यक मुद्दों और बहसों में ध्यान उलझाकर कोई गुप्त एजेंडा चलाना। क्या ऐसे चुपचाप होता है लोकतंत्र?

–होता है। लोकतंत्र चुपचाप ही होता है। निरंतर ही होता है। लोकतंत्र एक चक्र है, एक साइकल है। एक समावेशी और निरंतर प्रक्रिया है। पेड़ की सभी छोटी-बड़ी शाखाएँ, फूल-पत्ते, जड़ें, तना सब एक संतुलन और व्यवस्था के आधार पर खड़े और जुड़े होते हैं। अगर कभी यह संतुलन बिगड़ता है या बिगाड़ा जाता है तो पेड़ गिर पड़ता है या सूख जाता है। पहाड़ों, नदियों, वादियों का एक लोकतंत्र है अगर वह बिगड़ गया तो भूस्खलन होता है, बाढ़ आती है। नदियों के बहाव में घर नहीं बनाए जाते हैं। अगर बनाए जाते हैं तो केदारनाथ त्रासदी होती है, पानी पर पुल बनाए जाते हैं घर नहीं। नासमझी से पहाड़ों में सुरंगें खोदी जाती हैं तो जोशीमठ के घरों में दरारे आती हैं।

शरीर में अभी अंगों का एक अनुपात होता है। आँखें छोटी-बड़ी हो सकती हैं लेकिन दोनों आँखों की संयुति से फोकस बनता है। टाँगों की लंबाई तय नहीं होती। उनकी चलने दौड़ने की सुविधा के अनुसार उस शरीर का लोकतंत्र उनका आकार-प्रकार और संख्या तय करता है। पानी में सभी जीवों का आकार, संख्या समुद्र का लोकतंत्र तय करता है न कि मगरमच्छ कि जल में कौन कौन सी मछलियाँ कितनी संख्या में और कब तक रहेंगी।

हम कहते हैं सिंह जंगल का राजा होता है लेकिन क्या उसके लिए कोई जीव पानी का एक गिलास भी लेकर आता है? क्या कोई अस्वस्थता में उसके लिए देश या विदेश की विशेष सुविधा जुटाई जाती है? क्या वह दिन में दस बार कपड़े बदलता है? कुछ नहीं करता और सबसे अधिक सुविधाएँ भोगता है? क्या उसके मरने पर कहीं जंगल के जीवों का पेट काटकर ऊँचे से ऊँचा स्मारक या मूर्ति बनाई जाती है? क्या जंगल में किसी जीव का नस्ल संहार होता है? सब अपनी भूख जितना खाते हैं और बहुत बार तो वह भी कम पड़ जाता है। अगर शेर या जंगल के व्यापारी हिरण की खाल या हाथी दाँत का निर्यात या व्यापार करते तो बहुत सी प्रजातियाँ जंगल से लुप्त हो जातीं। जंगल बिक जाते और बहुत से जीवों के लिए जगह ही नहीं बचती।

आकाश में न जाने कितने अनगिनत ग्रह, नक्षत्र, और आकाश गंगाएँ हैं। लाखों करोड़ों प्रकाश वर्ष दूर तक भी। अकल्पनीय विस्तार। लेकिन कभी कोई अपनी परिक्रमा पथ से विचलित नहीं होता। सबके अपने परिभ्रमण मण्डल हैं, दूरियाँ निकटताएँ हैं। कभी सूरज चाँद के नियम नहीं बदलते, कभी ग्रह-नक्षत्र आपस में टकराते नहीं। सबकी एक ही धरती है, एक ही सूरज और एक ही चाँद है। बारिश किसी के जाति-धर्म के अनुसार नहीं होती। होती है तो सब घरों पर। प्रलय किसी एक देश, घर और समाज के लिए नहीं आती।

मतलब सृष्टि में सबका अपना अपना स्पेस और स्थान है। कोई अतिक्रमण नहीं करता, सब अपने स्पेस में रहते और विकसित होते और आयु पूरी करके नष्ट भी हो जाते हैं। फिर उसी पदार्थ से नया सृजन होता है, नई सृष्टि बनती है।

यह स्पेस ही लोकतंत्र है, यह स्वतः है। यही धर्म है। इसीके लिए कहा जाता है– धर्मो रक्षति रक्षितः। जो इस संतुलन और स्पेस की व्यवस्था बिगाड़ता है, वह अधर्म करता है और सृष्टि को संकट में डालता है। अगर यह स्पेस कोई अपने नियंत्रण में लेना चाहता है या लेता है तो संतुलन और व्यवस्था बिगड़ती है। यही डिक्टेटरशिप है।

इस स्पेस और सृष्टि को चलिए बहुत छोटा करते हैं, एक समाज में, एक मोहल्ले में, एक देश में एक परिवार के ले आते हैं। तो क्या वहाँ भी भिन्नता नहीं है। तरह तरह से व्यक्ति और विचार नहीं होते हैं? क्या उनका सामंजस्य नहीं करना पड़ता? क्या हर समय तलवारे, निकालें। आत्मरक्षा के नाम पर समाज में हथियार बांटें। किसी को घर-परिवार-समाज से निकाल दें? निकालकर कहाँ फेंकें? और क्यों? किसी को यह अधिकार किसने दिया? सभी छोटे-बड़े हैं और उस हिसाब से उनका स्पेस तय है। जब आप अपने आकार से अधिक स्पेस चाहते हैं तो दूसरों के लिए जगह कम पड़ती है। तब हाथी जंगल से बस्ती में आते हैं।

और जब कोई जीव इतना बड़ा बना लेता है खुद को या इतना बड़ा बन जाता है डाइनासोर की तरह तो उसे मरना पड़ता है। अपने स्पेस में रहे और दूसरों के लिए भी अवश्यक स्पेस छोड़े। यही सृष्टि है। स्पेस के अतिक्रमण से विनाश होता है, आदमी का, परिवार का, समाज का देश और दुनिया का। लोकतंत्र को बचाएँ, सृष्टि को बचाएँ, खुद को बचाएँ। आप ईश्वर नहीं हैं, नियंता नहीं हैं। मृत्यु को याद रखिए, दिमाग ठीक रहेगा। तभी संत मौत की बात करते हैं। मौत की बात करना जीवन से पलायन या घृणा नहीं है। संतुलन है। अपनी अपनी सीमाओं का ज्ञान है। कबीर कहता है– कबिरा गर्व न कीजिए ऊँचा देख अवास। काल्हि पड़े भुहिं लेटना ऊपर जमसी घास ॥

गाँधी यूँ ही तो नहीं कहता कि भूख से अधिक खाना भी चोरी है या यह धरती सबका पेट तो भर सकती है लेकिन विलासिता को नहीं झेल सकती। साधू गाँठि न बाँधई उदर समाता लेय। साधु बनें। शायद लालची मनुष्य के अतिरिक्त इस सृष्टि में सब साधु ही हैं। साधुता पलायन नहीं, संतुलन है।

–रमेश जोशी

भाषा, साहित्य और देश

आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी

आप जानते हैं कि वर्तमान काल कितना संकटमय है। सारी पृथ्वी मानो ब्रह्माण्ड-कटाह के अदृश्य तप्त रस में खौल रही है। प्रतिक्षण दुनिया का बाहरी और भीतरी नक्शा बदल रहा है। कल तक जो ध्रुव सत्य था, आज वह अस्थिर और डाँवाडोल साबित हो रहा है। हजारों वर्ष के इस पुरातन देश की एकता को खण्डित और छिन्न-भिन्न करने के अनेक प्रयत्न हो रहे हैं। जबकि सब कुछ डाँवाडोल है, जबकि सब कुछ हिल चुका है, जबकि भविष्यकालीन कल को सब कुछ सम्भव दीख रहा है तब आप दृढ़-संकल्प और विशाल मनोबल को लेकर इस महान् देश की एकता अक्षुण्ण बनाये रखने के लिए अग्रसर हुए हैं। यही कारण है कि मैं आपके बीच उपस्थित हो सकने को अपना सौभाग्य मानता हूँ। आप भारतवर्ष के उज्ज्वल और महान भविष्य का निर्माण कर रहे हैं। मुझे कोई संदेह नहीं है कि आपका प्रयत्न सफल होगा। भावी भारतवर्ष आपकी तपस्या से स्वास्थ और बलशाली होगा। विपत्ति की रात बीत जाएगी और समृद्धि का सुप्रभात होगा।

नाना कारणों से इस देश में और बाहर यह बार-बार विज्ञापित किया जाता है कि इस महादेश में सैकड़ों भाषाएँ प्रचलित हैं और इसीलिए इसमें अखण्डता या एकता की कल्पना नहीं की जा सकती। मैंने विदेशी भाषाओं के जानकारों और विदेश के नाना देशों में भ्रमण कर चुकने वाले कई विद्वानों से सुना है कि तथाकथित एक-राष्ट्र व स्वाधीन देशों में भी दर्जनों भाषाएँ हैं और भारत वर्ष की भाषा समस्या उनकी तुलना में नगण्य है। परन्तु अन्य देशों में यह अवस्था हो या नहीं, इससे हमारी समस्या का समाधान नहीं हो जाता। दूसरों की आँख में खराबी सिद्ध कर देने से हमारी आँख में दृष्टि-शक्ति नहीं आ जाएगी। फिर भी मैं आपको स्मरण कराना चाहता हूँ कि हमारे इस देश ने हजारों वर्ष पहले से भाषा की समस्या हल कर ली थी। हिमालय से सेतुबन्ध तक सारे भारतवर्ष के धर्म, दर्शन, विज्ञान, चिकित्सा आदि विषयों की भाषा कुछ सौ वर्ष पहले तक एक ही रही है। यह भाषा संस्कृत थी। भारतवर्ष का जो कुछ श्रेष्ठ है, जो कुछ उत्तम है, जो कुछ रक्षणीय है वह इस भाषा के भण्डार से संचित किया गया है। जितनी दूरी तक इतिहास, हमें ठेलकर पीछे ले जा सकता है उतनी दूर तक इस भाषा के सिवा हमारा और कोई सहारा नहीं है।

इस भाषा में साहित्य की रचना कम से कम छह हजार वर्षों से निरन्तर होती आ रही है। इसके लक्षाधिक ग्रन्थों के पठन-पाठन और चिन्तन में भारतवर्ष के हजारों पुश्त तक के करोड़ों सर्वोत्तम मस्तिष्क दिन-रात लगे रहे हैं और आज भी लगे हुए हैं। मैं नहीं जानता कि संसार के किसी देश में इतने काल तक, इतनी दूरी तक व्याप्त, इतने उत्तम मस्तिष्क में विचरण करने वाली कोई भाषा है या नहीं। शायद नहीं है।

फिर भी भाषा की समस्या इस देश में कभी उठी ही नहीं हो, सो बात नहीं है। भगवान बुद्ध और भगवान महावीर ने संस्कृत के एकाधिपत्य को स्वीकार किया था, उन्होंने लोकभाषा को आश्रय करके अपने उपदेश प्रचार किये थे। ऐसा जान पड़ता है कि संस्कृत भाषा को इस युग में पहली बार एक प्रतिद्वन्द्वी भाषा का सामना करना पड़ा था। जहाँ तक बौद्ध धर्म का सम्बन्ध है यह निश्चयपूर्वक नहीं कहा जा सकता कि उस युग की लोकभाषा कही जानेवाली पालि सचमुच ही बुद्धदेव के मुख्य से उच्चारित भाषा थी या नहीं। प्रियदर्शी महाराज अशोक ने दृणता के साथ लोकभाषा को प्रचारित करना चाहा था। इसका सबूत हमारे पास है और सीलोन तथा बर्मा आदि में प्राप्त पालि भाषा का बौद्ध साहित्य भी हमें बताता है कि बुद्धदेव ने सिर्फ इस लोकभाषा में उपदेश ही नहीं दिया था बल्कि निश्चित रूप से अपनी वाणी को संस्कृत में रूपान्तर करने का निषेध भी किया था। यह साहित्य स्थविरवादियों का है जो कई बौद्ध सम्प्रदायों में से एक है। आधुनिक काल में बौद्ध साहित्य की जब पहले-पहल इस देश मे चर्चा शुरू हुई थी तब इन पालि ग्रंथों को एक मात्र प्रमाण मान लिया गया था, और उस समय जो कुछ कहा गया था वह अब भी संस्कार रूप से बहुत से सुसंस्कृत जनों के मन पर रह गया है। परन्तु सही बात यह है कि स्थविरवादियों का यह साहित्य विशाल बौद्ध साहित्य का एक अत्यन्त अल्प अंशमात्र है। न तो वह एक मात्र बौद्ध साहित्य ही है, और न सर्वाधिक प्रामाणिक साहित्य ही है, न यही जोर देकर कहा जा सकता है कि यह सबसे अधिक पुराना साहित्य है। इस शास्त्र का संकलन कई बड़ी संगतियों में हुआ है। आपको मालूम ही होगा कि बुद्धदेव के निर्वाण के बाद उनके वचनों को ठीक-ठीक संग्रह करने के लिए बौद्ध आचार्यों की बड़ी-बड़ी सभाएँ हुई थीं। इन्हें संगीति कहा जा सकता है।

अशोक संगीति के अवसर पर अठारह बौद्ध सम्प्रदायों की चर्चा मिलती है। इन सबके अलग-अलग पिटक थे और इनमें सिर्फ पाठ का ही भेद नहीं था; विषय, वस्तु और भाषा का भी भेद था। बहुत पुराने काल में हीनयान और महायान दोनों ही प्रधान बौद्ध शाखाओं के ग्रंथ संस्कृत और अर्द्ध-संस्कृत में लिखे जाने लगे थे। आज इनमें का अधिकांश खो गया है। फिर भी आज नेपाल से तो कल तुर्किस्तान और मध्य रशिया से नये-नये ग्रन्थ मिलते रहते हैं और बौद्ध साहित्य की भाषा के सम्बन्ध में किये गये पूर्ववर्ती अनुमानों को धक्का मार जाते हैं।

सातवीं शताब्दी में इन बौद्ध ग्रन्थों का एक विशाल साहित्य था। चीनी यात्री हुएन्त्सांग उन दिनों जब इस देश में आये थे तब वे स्थविरवादी, महासंधिक, महीशास्त्रक काश्यपीय, धर्मगुप्त, सर्वास्तिवादी आदि सम्प्रदायों के 593 ग्रन्थ अपने साथ ले गये थे। ये अधिकांश संस्कृत में थे। इस प्रकार यद्यपि एक सम्प्रदाय की गवाही पर हम पालि को संस्कृत की प्रतिद्वन्द्विनी भाषा के रूप में पाते हैं,

तथापि बहुत शीघ्र ही संस्कृत ने उस प्रतिक्रिया पर विजय पा ली थी।

भगवान महावीर के द्वारा पुनरुज्जीवित जैन धर्म के विषय में भी यह एक ही बात कही जा सकती है। सन् ईसवी के बाद के सिद्धान्तोत्तर साहित्य में धीरे-धीरे संस्कृत का प्रवेश होने लगा और जैन आचार्यों ने नाना काव्य और नाटकों की भाषा को समृद्ध ही नहीं बनाया, उसमें नवीन प्राण भी संचारित किये। मैंने जैन-प्रबन्धों की प्राकृतगन्धी संस्कृत देखी है और मैं साहस पूर्वक कह सकता हूँ कि संस्कृत को इतना सरल और प्रांजल बनाना एकदम नवीन और स्फूर्तिदायक प्रयास था। जैन मुनियों ने इसमें प्रांजलता ले आने में कमाल का किया है। जैन धर्म की श्रेष्ठ चिन्ता तो उनके दर्शन-शास्त्र हैं जो अधिकांश में ही हैं। इस साहित्याँग ने संस्कृत के दर्शन-साहित्य को नये सिरे से उत्तेजना दी है। जिन दिनों भारतवर्ष की सांस्कृतिक अवस्था अत्यन्त उतार पर थी उन दिनों भी जैन दर्शन ने थोड़ी-बहुत गर्मी बनाये रखने का आश्चर्यजनक कार्य किया था।

मेरे कहने का तात्पर्य इतना ही है कि यद्यपि कभी इस भाषा में और कभी उस भाषा में धर्मोपदेश और उस काव्य आदि की रचना के प्रमाण पाये जाते हैं, परन्तु सब मिलाकर पिछले कई सहस्राब्दकों तक भारतवर्ष के सर्वोत्तम को, उसके ज्ञान और विज्ञान को, उसके दर्शन और अध्यात्म को, उसके ज्योतिष और चिकित्सा को, उसकी राजनीति और व्यवहार को, उसके कोश और व्यकरण को और उसकी समस्त चिन्ता को इस भाषा का ही सहारा मिला है।

विदेशियों के झुण्ड बराबर इस देश में आते रहे हैं और आकर इन्होंने बड़ी जल्दी सीख लिया है कि संस्कृत ही इस देश में उनके काम की भाषा हो सकती है। यह आश्चर्य की बात कही जाती है कि संस्कृत भाषा का सबसे पुराने शिलालेख जो अब तक पाया गया है वह गिरनार वाला शक महाक्षत्र रूद्रदामा का शिलालेख है जो सन् ईसवी के लगभग डेढ़ सौ वर्ष बाद खुदवाया गया था। इस शिलालेख ने उस भ्रम का निराकरण कर दिया था जो ऐतिहासिक पण्डितों द्वारा प्रचारित किया गया था कि संस्कृत का अभ्युत्थान बहुत शताब्दियों बाद गुप्त सम्राटों के हाथों हुआ है। इसमें कोई सन्देह नहीं कि गुप्त सम्राटों के युग से संस्कृत भाषा ज्यादा वेग से चल पड़ी थी, परन्तु यह नितान्त गलत बात है कि उससे पहले उसकी (संस्कृत भाषा की) धारा एकदम रूद्ध हो गयी थी।

शुरू-शुरू में मुसलमान बादशाह भी इस भाषा की महिमा हृदयंगम कर सके थे। पठानों के सिक्कों से नागरी अक्षरों का ही नहीं, संस्कृत भाषा का भी अस्तित्व सिद्ध किया जा सकता है। परन्तु बाद में जमाने ने पलटा खाया और अदालतों और राजकार्य की भाषा फारसी हो गयी। इस देश के बड़े समुदाय ने नाना कारणों से मुसलमानी धर्म का वरण किया और फलतः एक बहुत बड़े सम्प्रदाय की धर्मभाषा अरबी हो गयी। यह अवस्था अधिक से अधिक पाँच सौ वर्ष तक रही है। परन्तु आप भूल न जाएँ कि इस समय भी भारतवर्ष की श्रेष्ठ चिन्ता का स्रोत संस्कृत के ही रास्ते बह रहा था। नाना शास्त्र-ग्रंथों की अतुलनीय टीकाएँ, धर्म शास्त्रीय व्यवस्था के निबन्ध-ग्रंथ, दर्शन और अध्यात्म विषयक अनुवाद और टीका-ग्रन्थ और सबसे अधिक नव्य-न्याय और न्यायानुप्राणिता-व्याकरण शास्त्र इसी काल में लिखे जाते रहे। इस युग में यद्यपि संस्कृत ग्रन्थों में से मौलिक चिन्ता बराबर घटती जा रही थी। फिर भी वह एक दम लुप्त नहीं हो गयी थी। कुछ शताब्दियों तक भारत वर्ष एक विचित्र अवस्था में से गुजरा है। उसके न्याय, राजनीति और व्यवहार की भाषा फारसी रही है, हृदय की भाषा तत्तत् प्रदेशों की प्रान्तीय भाषाएँ रही हैं और मस्तिष्क की भाषा संस्कृत रही है। हृदय की भाषा बराबर किसी न किसी रुप में देशी भाषाएँ रही हैं। यह और बात है कि दूर पड़ जाने से पिछले हजारों वर्षों के देशी भाषा का साहित्य आज हम न पा सकें पर वह वर्तमान जरूर रहा है और उसका सम्मान भी हुआ है। मैं आज इस बात की चर्चा नहीं करूँगा। मैंने अन्यत्र सप्रमाण दिखाया है कि इस देश में देशी भाषाओं में सदा काव्य लिखे जाते रहे हों सिर्फ यही बात नहीं है बल्कि उनका भरपूर सम्मान भी बराबर होता रहा है।

एक बार मेरे इस कथन को संक्षेप में आप अपने सामने रख कर देखें तो हमारी वर्तमान भाषा-समस्या काफी स्पष्ट हो जाएगी। मैंने अब तक जो आपको प्राचीन-काल के खण्डहरों में भटकाया, वह इसी उदेश्य से। संक्षेप में बात इस प्रकार है कि-

1. भारतवर्ष के दर्शन-विज्ञान आदि की भाषा सदा संस्कृत रही है।

2. उसके धर्म-प्रचार की भाषा अधिकांश में संस्कृत रही है, यद्यपि बीच-बीच में साहित्य के रूप में और सदैव बोलचाल के रूप में देशी भाषाएँ भी इस प्रयोजन के लिए काम लायी जाती रही हैं।

3. आज से चार-पाँच सौ वर्ष पहले तक व्यवहार, नयाय और राजनीति की भाषा भी संस्कृत ही रही है। पिछले चार-पाँच सौ वर्षों से विदेशी भाषा ने इस क्षेत्र को दखल किया है।

4. काव्य के लिए सदा से ही कथ्य देशी भाषाएँ काम में लायी गयी हैं और संस्कृत भी सदा इस कार्य के उपयुक्त मानी गयी है।

अब अगर आप ध्यान पूर्वक देखें तो हजारों वर्ष के इतिहास ने हमारी भाषा समस्या को इस प्रकार सुलझाया है कि हमारे उच्चतर विचार, तर्क, दर्शन विज्ञान, राजनीति, व्यवहार और हमारे न्याय की भाषा का सदा एक सामान्य स्टैण्डर्ड रहा है और हमारे इतिहास के एक अत्यन्त सीमित काल में हमारी भाषा के विशाल साहित्य के एक अत्यन्त नगण्य अंश पर विदेशी भाषा का आधिपत्य रहा है। अर्थात हमारे कम से कम छह सात हजार वर्ष के विशाल इतिहास में अधिकसे अधिक पाँच सौ वर्ष ऐसे रहे हैं जिनमें अदालतों की भाषा संस्कृत न होकर एक विदेशी भाषा रही है। दुर्भाग्यवश इस सीमित काल और सीमित अंश में व्यवहृत भाषा का दावा आज हमारी भाषा समस्या का सर्वाधिक जबर्दस्त रोड़ा साबित हो रहा है। पर यह एक सामयिक बात है। आज यह जितनी बड़ी बाधा के रुप में भी क्यों न दीख रही हो, इतिहास की विशाल पट-भूमिका पर इसे रखकर देखिए तो इसमें कुछ तत्व नहीं रह जाएगा। यह बात उतनी महत्वपूर्ण नहीं है जितनी की आपाततः दीख रही है। इस विशाल देशों की भाषा समस्या का हाल आज से सहस्रों वर्षों पूर्व से लेकर अब तक जिस भाषा के जरिये हुआ है उसके सामने कोई भी भाषा न्यायपूर्वक अपना दावा लेकर उपस्थित नहीं रख सकती-फिर वह स्वदेशी हो या विदेशी, इस धर्म के मानने वालों की हो या उस धर्म के। इतिहास साक्षी है कि संस्कृत इस देशों की अद्वितीय महिमाशालिनी भाषा है–अविजित अनाहत और दुर्द्धर्ष।

आज से डेढ़-दो सौ वर्ष पहले तक यही अवस्था रही है। इसके

बाद नवीन युग शुरू होता है। जमाने के अनिवार्य तरंगाघात ने हमें एक दूसरे किनारे पर लाकर पटक दिया। दुनिया बदल गयी तथा और भी तेजी से बदलती जा रही है। अँग्रेजी-साम्राज्य ने हमारी परम्परा को तोड़ दिया गया है। इन डेढ़-सौ वर्षों में हम इतने बदल गये हैं, सारी दुनिया ही इतनी बदल गयी है कि पुराने जमाने का को पूर्वज हमें शायद ही पहचान सकेगा। हमारी शिक्षा-दीक्षा से लेकर विचार-वितर्क की भाषा भी विदेशी हो गयी है। हमारे चुने हुए मनीषी अँग्रेजी भाषा में शिक्षा पाये हुए हैं, उसी में बोलतें हैं और उसी में लिखते रहे हैं। अँग्रेजी भाषा ने संस्कृत का सर्वाधिकार छीन लिया है। आज भारतीय विद्याओं की जैसी विवेचना और विचार अँग्रेजी भाषा में है, उसकी आधी चर्चा का भी दावा कोई भारतीय भाषा नहीं कर सकती। यह हमारी सबसे बड़ी पराजय है। राजनीतिक सत्ता के छिन जाने से हम उतने नतमस्तक नहीं हैं जितने कि अपने विचार की, तर्क की, दर्शन की, अध्यात्म की और सर्वस्व की भाषा छिन जाने से अन्तरराष्ट्रीय क्षेत्र में हम अपनी ही विद्या को अपनी बोली में न कह सकने के उपहासास्पद अपराधी हैं। यह लज्जा हमारी जातीय है। देश का स्वाभिमानी हृदय इस असहाय अवस्था को अधिक बर्दाश्त नहीं कर सकता।

जब हममें राष्ट्रीय चेतना का संचार हुआ तो हमने देखा कि हम लुट चुके हैं। हमारे नायकों ने कहा, सँभल जाओ। पर क्या सँभलें, कैसे सँभलें? क्या संस्कृत को अपनाकर? यह असम्भव है।

क्यों? जो कल तक सम्भव था, वह आज असम्भव क्यों है? इसलिए कि दुनिया बदल गयी है। अब शास्त्र या कोई अन्य ग्रन्थ मुक्ति पाने या परलोक बनाने के लिए नहीं लिखे जाते तथा अब विद्या और ज्ञान एक विशेष श्रेणी की सम्पत्ति नहीं माने जाते। आज मनुष्य ने हर क्षेत्र में अपनी प्रधानता बना ली है। जो कुछ है, मनुष्य के लिए–चाहे वह धर्म हो, दर्शन हो, राजनीति हो, कुछ भी हो मनुष्य उसके लिए नहीं है।

वह जमाना ही मर गया जब केवल भाषा पर अधिकार करने के लिए वर्षों परिश्रम किया जाता था और जब गर्वपूर्वक कहा जाता था कि 'द्वादशरभिर्वर्षव्याकरणं श्रूयते' अर्थात 'बारह वर्ष में व्याकरण शास्त्र के सुनने की योग्यता होती है'। अब भाषा गौड़ है, विचार मुख्य, और विचार भी ऐसे नहीं जो विचार के लिए लिखे गये हों; विचार भी ऐसे जो मनुष्य के लिए हों और जिनसे निश्चित रूप से मनुष्यता उपकृत होती हो। इसीलिए सबसे सीधा रास्ता यह है कि विचारों की अधिकाधिक सहज भाषा में पहुँचाया जाये है। यह सहज भाषा तत्तत् प्रदेशों की अपनी-अपनी बोली ही हो सकती है। इस युग में वही हुआ है। हमने अँग्रेजी की प्रतिद्वन्द्विता और अपनी-अपनी बोलियों को खड़ा किया है। यह उचित है, वही योग्य है परन्तु यही सब कुछ नहीं है। हमें सारे देश में एक विचार-स्रोत को बहा देना है। सारे देश में एक ही उमंग, एक ही आवेग, एक ही सहानुभूतिमय हृदय उत्पन्न करना है। यह कैसा हो? इतिहास में पहली बार हमने इस समस्या को इतने निबिड़ भाव से अनुभव किया है?

आज से डेढ़-दो सौ वर्ष पहले तक संस्कृत भाषा ने हमारे भीतर विचारगत एकता बनाये रखने का प्रयत्न किया था।बंगाल के रघुनन्दन भट्ट अपनी व्यवस्थाएँ इसी भाषा के बल पर कन्याकुमारी से कश्मीर तक पहुँचा सके थे, काशी के नागेश भट्ट को व्याकरणशास्त्रीय विचार सारे देश में फैला देने में कोई बाधा नहीं पड़ती थी, महाराष्ट्र के गणेश दैवज्ञ को अपनी ज्योतिषिक शोध इस विशाल देश के इस कोने से उस कोने तक फैला देने में कोई कठिनाई नहीं पड़ी। परन्तु आज अवस्था एकदम बदल गयी है। हमारे पास अपना कोई भी स्वदेशी माध्यम नहीं रह गया है जिसके द्वारा हमारे सर्वोत्तम व्यक्ति अपनी ज्ञान सम्पत्ति अनायास ही सारे देश में फैला सकें। स्वामी विवेकानन्द और स्वामी रामतीर्थ को अपने वेदान्त सम्बन्धी सन्देश विदेशी भाषा में लिखने पड़े, लोकमान्य तिलक को अपनी वेद और ज्योतिष सम्बन्धी शोध, तथा डॉक्टर भाण्डारकर को हिन्दू देव-देवियों के विषय में किया हुआ महत्त्वपूर्ण अध्ययन विदेशी माध्यम से देशवासियों तक पहुँचाना पड़ा। ऐसा तो इस देश में हुआ है कि धर्मोपदेश के लिए भिन्न-भिन्न प्रान्तों की भाषाओं से काम लिया गया हो। थोड़े समय के लिए ऐसा भी हुआ है कि राजकीय व्यवहार की भाषा कुछ और हो गयी हो, परन्तु हमारे उच्चतर अध्ययन, दार्शनिक विचार और वैज्ञानिक गवेषणा की भाषा भी विदेशी हो गयी हो, ऐसा कभी नहीं हुआ। इसीलिए राजनीतिगत उथल-पुथल के होते हुए भी सुदूर प्रदेशों में फैला हुआ यह महादेश होते हुए भी इसमें एक अद्भुत एकता पायी जाती रही है। आज इस पर भी विदेशी भाषा का आधिपत्य है। इसीलिए कहता हूँ कि भाषा-समस्या को इतने निबिड़ भाव से ऐसे गाढ़ भाव से हमने अपने समूचे इतिहास में कभी भी अनुभव नहीं किया है।

परन्तु हम अब संस्कृत को फिर से नहीं पा सकते। अगर बीच में अँग्रेजी ने आकर हमारी परम्परा को बुरी तरह तोड़ न भी दिया होता तो भी आज हम संस्कृत को छोड़ने को बाध्य होते, क्योंकि वह जनसाधारण की भाषा नहीं हो सकती। जिन दिनों एक विशेष श्रेणी के लोग ही ज्ञान-चर्चा का भार स्वीकार करते थे, उन दिनों भी यह कठिन और दुःसह थी। परन्तु आज वह जमाना नहीं रहा। हम बदल गयें हैं, हमारी दुनिया पलट गयी है हमारे पुराने विश्वास हिल गये हैं, हमारी ऐहिकता बढ़ गयी है, और हमारे वे दिन हमेशा के लिए चले गये। भवभूति के राम की भाँति हम भी अब यह कहने को लाचार हैं कि "ते हि नो दिवसा गतः"–अब हमारे वे दिन नहीं रहे।

अफसोस करना बेकार है। हम जहाँ आ पड़े हैं, वहीं से हमें यात्रा शुरू करनी है। काल धर्म हमें पीछे नहीं लौटने देगा। हमें अपने को और अपनी दुनियाँ को समझने में अपने हजारों वर्षों के इतिहास का अनुभव प्राप्त है। हम इस दुनिया में नये नहीं हैं, नौसिखुए नहीं हैं। अपने संस्कारों के अनुभवों के लिए हमें गर्व है। ये हमें अपने को और अपनी दुनिया को समझने में सहायता पहुँचाएँगे। हमें याद रखना चाहिए कि अनुभव और संस्कार तभी वरदान होते हैं जब वे हमे आगे ठेल सकें, कर्मशील बना सकें। निठल्से का अनुभव उसे खा जाता है और संस्कार उसे भी अपाहिज बना देता है।

हमारा पुराना अनुभव बताता है कि हम आसेतु-हिमाचल एक भाषा से एक संस्कार, एक विचार, एक मनोवृत्ति तैयार कर सकते हैं और वह एक भाषा संस्कृत है। हमारी नयी परिस्थिति बता रही है कि शास्त्रों की चर्चा से मुक्ति या परलोक बनाने वाला आदर्श अब नहीं चल सकता। 'एकः शब्दः शब्द सम्यग्ज्ञातः' अर्थात 'एक भी शब्द भलीभाँति जान लिया जाये तो स्वर्गलोक में श्रेष्ठ स्थान प्राप्त हो जाता है' का आदर्श इस काल में नहीं टिक सकता, जबकि प्रत्येक कार्य

में हड़बड़ी और जल्दी की भावना काम कर रही है। हमें एक ऐसी भाषा चुन लेनी है जो हमारी हजारों वर्ष की परम्पराओं से कम से कम विच्छिन्न हो और हमारी नूतन परिस्थित का सामना अधिक से अधिक मुस्तैदी से कर सकती हो; संस्कृत न होकर भी संस्कृत-सी हो और साथ ही जो प्रत्येक नये विचार को प्रत्येक नयी भावना को अपना लेने में एकदम हिचकिचाती न हो, जो प्राचीन परम्परा की उत्तराधिकारिणी भी हो और नवीन चिन्ता की वाहिका भी।

चूँकि वर्तमान युग में मनुष्य की प्रधानता समान भाव से स्वीकार कर ली गयी है इसलिए उसी को दृष्टि में रखकर इस समस्या को हल किया जा सकता है। जिस प्रकार मनुष्य की सुविधा की दृष्टि से सहज-सरल देशी भाषाओं को प्रोत्साहित किया गया है, उसी प्रकार वृहत्तर देश के विराट् मानव-समुदाय को दृष्टि में रखकर सामान्य भाषा की समस्या भी हल की जा सकती है। अधिकांश मनुष्य जिस भाषा में बोल सकते हों अधिकांश मनुष्यों की नाड़ी के साथ जिस भाषा का अच्छेद्य सम्बन्ध हो, वह भाषा क्या है? आपसे कहने की आवश्यकता नहीं है। आपने अपने ढंग से उसका उत्तर खोज लिया है पर मैं आपको संस्कृत की याद एक बार फिर दिला देता हूँ। हिन्दी या हिन्दुस्तानी हमारी अधिकजनों की समझ में आनेवाली अधिक प्रचलित भाषा जरूर है पर संस्कृत ने हमारे सर्वदेश की भाषा पर जो अपना अनुत्सारणीय (न हटाया जा सकनेवाला) प्रभाव रख दिया है, वह कम नहीं है हम हजार संस्कृत की परम्परा से च्युत हों और उस भाषा तथा उसके विशाल साहित्य को भूल गये हों, पर वह हमसे दूर नहीं हो सकती। हमने चाहे कमली को छोड़ दिया हो पर कमली हमें नहीं छोड़ सकती। संस्कृत ने हममें अब भी चौदह आना एकता कायम कर रखी है। नये सिरे से हमें दो आना ही प्रयत्न करना है। वस्तुतः हिन्दी और अन्यान्य भारतीय भाषाओं में चौदह आना ही साम्य है। दो आना ही हमें नये सिरे से गढ़ना है। यह आप कर रहें है।

परन्तु मैं उम्मीद करता हूँ कि आपने मुझे गलत नहीं समझा है। मैं संस्कृत को भाषा बनाने की वकालत नहीं कर रहा हूँ, मैं कह रहा हूँ, कि पिछले हजारों वर्षों के इतिहास ने हमें जो कुछ दिया है, उससे हम सबक सीखें। मेरे कथन का तात्पर्य यह नहीं है कि हम विदेशी शब्दों का बहिष्कार करें। अगर आपने मेरे कथन का यह अर्थ समझा हो तो मैंने कहीं अपनी बात उपस्थित करने में गलती की होगी। मैं ऐसा कैसे कह सकता हूँ जबकि हमारी श्रद्धेय संस्कृत भाषा ने ही विदेशी शब्दों को ग्रहण करने का रास्ता दिखाया है। हमारे संस्कृत साहित्य में होरा, द्रेक्काण, अपोल्किम, पणफर, कौर्प्य, जूक, लेय, हेलि आदि दर्जनों ग्रीक शब्द व्यवहृत हुए हैं। ये ग्रीक शब्दों के संस्कृतवत् रूप हैं परन्तु संस्कृत में इतने अधिक प्रचलित हो गये हैं कि कोई संस्कृत का पण्डित उनकी शुद्धता में भी सन्देह नहीं करता। कम से कम एक कोड़ी (बीस) ग्रीक शब्द मैं आपको ऐसे दे सकता हूँ जिनका व्यवहार धर्म-शास्त्रीय व्यवस्था देने वाले ग्रंथों में होता है। ज्योतिष के (ताजक-शास्त्र) वर्ष-फल मासफल आदि बतलाने वाला ज्योतिष शास्त्र का एक अंग के योगों के नाम में बीसियों अरबी शब्द मिलेंगे। ताजक नीलकण्ठी (एक ज्योतिष-ग्रन्थ) ये यदि मैं एक श्लोक पढ़ूँ, तो आप शायद समझेंगे कि मैं कुरान की आयत पढ़ रहा हूँ–

"खल्लासरं रूद्दमथो दुफालिः कुत्थं तदुत्थोत्थ दिवीर नामा।"

और

"स्यादिक्कवालः इशराफ योगः", इत्यादि।

रमल ('रमल' नामक ज्योतिष विद्या) के ग्रंथों में कोड़ियों (बीसों) अरबी और फारसी के शब्द व्यवहृत हुए हैं। एक श्लोक में 'तारीख' शब्द का ऐस व्यवहार किया गया है मानो वह पाणिनी का ही शब्द है–'तारीखे च त्रितये त्रयोदशे"। सुल्तान शब्द का सुरत्राण रूप संस्कृत के काव्य-ग्रंथों में ही नहीं, मुसलमान बादशाहों के सिक्कों पर भी पाया जाता है। पुरातन प्रबन्ध-संग्रह में एक जगह मसजिद को मीसित बनाकर ही प्रयोग नहीं किया गया है, अनुप्रास के साँचे में बैठकर 'अशीतिर्मसीति' कहकर उसमें सुकुमारता भी लायी गयी है। नहीं, मैं यह नहीं कह रहा हूँ कि आप विदेशी शब्दों को निकालना शुरू करें। मुझे गर्व है कि आपने आज जिस भाषा को अपने लिए सामान्य-भाषा के रूप में वरण किया है, उसने उर्दू के रूप में इतने विदेशी शब्दों को हजम किया है कि संसार की समस्त विदेशी भाषाओं को पाचन-शक्ति की प्रतिद्वन्द्विता में पीछे छोड़ गयी है। प्रचलित शब्दों का त्याग करना मूर्खता है; पर मैं साथ ही जोर देकर कहता हूँ कि किसी विदेशी भाषा के शब्दों के आ जाने के भर से वह विदेशी भाषा संस्कृत के साथ बराबरी का दावा नहीं कर सकती। वह हमारे नवीन भावों के प्रकाशन के लिए संस्कृत के शब्दों को गढ़ने से हमें नहीं रोक सकती। प्रचलित शब्दों को विदेशी कहकर त्याद देना मूर्खता है; पर किसी के भाषा के शब्दों का प्रचलन देकर अपनी हजारों वर्ष की परम्परा की उपेक्षा करना आत्मघात है। संस्कृत ने भिन्न-भिन्न भाषाओं के हजारों शब्द लिये हैं; पर उन्हें संस्कृत बनाकर। हम अब भी विदेशी शब्दों को लें तो उन्हें भारतीय बनाकर, इस देश के उच्चारण और वाक्य-रचना परम्परा के अनुकूल बनाकर।

मगर यह तो मैं अवान्तर बात कह गया। मैं मूल प्रश्न पर फिर आ रहा हूँ। इस युग का मुख्य उदेश्य मनुष्य है। इस युग का सबसे बड़ा अभिशाप यह है कि विज्ञान की सहायता से जहाँ वाह्य भौगोलिक बन्धन तड़ातड़ टूट गये हैं वहाँ मानसिक संकीर्णता दूर नहीं हुई है। हम एक-दूसरे को पहचानते नहीं। तीन दिन की सारे संसार की यात्रा करके लौटे हुए यात्रा-विलासी लोगों और नाना प्रकार के स्वार्थ-परायणों की पुस्तकों ने संसार में घोर गलतफहमी फैला रखी है। इस देश में ही हम एक प्रदेश वाले दूसरे प्रदेश के लोगों को नहीं समझ रहे, एक सम्प्रदाय के लोग दूसरे सम्प्रदाय के लोगों को नहीं पहचान रहे। इसीलिए इतनी मारामारी-काटाकाटी चल रही है। आपने जब एक सामान्य भाषा को बनाने की ठानी है तो आप से आशा होती है कि आप यहाँ नहीं रूकेंगे। यह भी ब्राह्य (बाहरी) बात है। और भी आगे चलिए। एक साहित्य बनाइए। गलतफहमी दूर कीजिए। ऐसा कीजिए कि एक सम्प्रदाय दूसरे सम्प्रदाय को समझ सके। एक धर्मवाले दूसरे धर्मवाले की कदर कर सकें। एक प्रदेशवाले दूसरे प्रदेशवाले के अन्तर में प्रवेश कर सकें। ऐसा कीजिए कि इस सामान्य माध्यम के द्वारा आप सारे देश में एक आशा, एक उमंग और एक उत्साह भर सकें। और फिर ऐसा कीजिए कि हम इस भाषा के जरिये इस देश की और अन्य देशों की इस काल की और अन्य कालों की समूची ज्ञान-सम्पत्ति आपस में विनिमय कर सकें।

तकषी शिवशंकर पिल्लै

भारतीय ज्ञानपीठ का 1984 का ज्ञानपीठ पुरस्कार मलयालम के साहित्यकार तकषी शिवशंकर पिल्लै को उनके भारतीय साहित्य को अमूल्य योगदान के लिए समर्पित किया गया। तकषी शिवशंकर पिल्लै मलयालम साहित्य में कहानीकार, उपन्यासकार, नाटककार, यात्रावृत्त लेखक के रूप में अग्रणी लेखक माने जाते हैं। समाज के गरीब-वर्ग, तिरस्कृत, बहिष्कृत एवं वंचित जन की समस्याओं को लेखनी के माध्यम से सबके समक्ष रखा और सरल किंतु तीक्ष्ण गद्य-शैली से वह मानवमन के अंतरालों में झाँकते हैं। सामाजिक यथार्थ की पक्की और अंतरंग पकड़ और एक विश्वसनीय स्पष्टवादिता से उनका संवेदनशील और सहानुभूति के साथ मनोग्राही प्रस्तुतीकरण उनकी सृजनात्मकता की उल्लेखनीय पहचान है। उनके उपन्यास 'चेम्मीन' को सन 1984 में 'ज्ञानपीठ पुरस्कार' से सम्मानित किया गय

'चेम्मीन' केरल के समुद्रतट पर बसे मछुआरे समुदाय की कहानी है जिसकी कथावस्तु भारतीय आदर्शों– धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष पर आधारित है। 'चेम्मीन' का लयात्मक गद्य और रोमांस मलयानिल का झोंका है, साथ ही प्रेम और लालसा की यह कथा सामाजिक नियमों का उल्लंघन कर अति त्रासद हो उठती है। सामाजिक निषेध की यह कथा एक मछुआरे की बेटी करुत्तम्मा और मछली बेचने वाले मुसलमान परीकुट्टी की जुनूनी प्रेम कहानी चार अध्यायों में चलती है। बचपन का प्रेम ठीक है, पर आवेशपूर्ण प्रेम जवानी तक चला आए, भला समाज यह कैसे सहे। परिवार को भी गंवारा नहीं है। इनके अलावा करुत्तम्मा की माँ चक्की (शक्ति), उसका लालची, जिद्दी एवं महत्वकांक्षी पिता चेम्बनकुंजु, उसकी बहन पंचमी, करुत्तम्मा का पति अनाथ मछुआरा पलनी उपन्यास के अन्य पात्र हैं। यहाँ समुद्र स्वयं एक किरदार के रूप में उपस्थित है। सागर माता (कडलम्मा) का तकषि की कलम ने गजब का चित्रण किया है। समुद्र अपने सब रूप-रंग में यहाँ उपस्थित है, आप पढ़ते हुए समुद्र का अनुभव करते हैं। कभी वह शांत है, कभी क्रोधित हो गर्जन-तर्जन कर रहा है, कभी प्रेम-स्थली है, तो कभी मृत्यु-शैय्या। सरल भाषा में लिखा उपन्यास 'चेम्मीन' मनुष्य और प्रकृति की विभिन्न भावनाओं का सूक्ष्म विवरण देता है। यहाँ चुलबुलापन, क्रोध, दु:ख, असहायता, पराजय, हँसी-खुशी, हास्य-रोदन सब भावनाएँ जीवंत हैं। मछुआरों के रीति-रिवाज, विधि-निषेध, संभ्यता-संस्कृति, विश्वास, मिथक, उनके दैनंदिन जीवन का जीता-जागता चित्रण है उपन्यास 'चेम्मीन'। केरल समुद्र तट के मछुआरों की भरे-पूरे जीवन की गाथा ही नहीं ये मानव जीवन की सार्वभौम कथाएँ हैं। इस उपन्यास पर रामू करियात ने फिल्म बनाई जिसे राष्ट्रपति स्वर्ण पदक प्रदान किया गया था।

तकषी शिवशंकर पिल्लै का जन्म 17 अप्रैल, 1917 में केरल के तकषी नामक गाँव में हुआ था। उनकी आरंभिक शिक्षा गाँव में तथा सातवीं कक्षा तक की पढ़ाई गाँव से 12 किलोमीटर दूर समुद्र तट पर स्थित अंपलप्पुषा स्कूल में हुई। हाई स्कूल कुरुवत्त से हुई और यहाँ से ही उनका लेखन-कौशल प्रस्फुटित हुआ और अध्यापक के ।कुमार पिल्लै के सुझाव से गद्य लेखन की ओर आकृष्ट हुए। इनकी पहली कहानी 'साधुकल' 1929 में नायर सर्विस सोसायटी की पत्रिका 'सर्विस' में प्रकाशित हुई थी। त्रिवेंद्रम में 'केसरी' पत्रिका के संपादक ए. बालकृष्ण पिल्लै के संपर्क में आने से उन्हें लेखन के लिए प्रोत्साहन मिला और साहित्य जगत में पहचान मिली। उनकी अनेक कहानियाँ 'केसरी' में प्रकाशित भी हुईं। त्रिवेंद्रम प्रवास के दौरान तकषी शिवशंकर पिल्लै ने योरोपीय एवं भारतीय भाषाओं के साहित्य का अध्ययन किया। मोपासां, चेखोव, टालस्टाय, गोर्की, प्रेमचंद, टैगोर आदि उनके प्रिय लेखक रहे। समसामयिक परिस्थितियाँ लेखक के व्यक्तित्व को प्रभावित करती हैं जिसका प्रभाव उनके लेखन में अभिव्यक्त होता है, पर समय के साथ तकषी जी का सृजनात्मक कौशल परिपक्व होता गया और परिणामत: 'चेम्मीन', 'कॅयर' जैसी उत्कृष्ट रचनाएँ साहित्य-जगत को मिलीं। तकषी जी की कहानी कला के संबंध में चंगमपुषा कृष्णा पिल्लै ने लिखा है– 'तकषी का

डॉ. दीपक पाण्डेय

सहायक निदेशक, केंद्रीय हिन्दी निदेशालय, शिक्षा मंत्रालय भारत सरकार, नई दिल्ली-66

ईमेल –dkp410@gmail.com

स्टाइल अत्यधिक सरल व हृदयग्राही है जो कि कोई भी कहानी लेखक अपनाना चाहेगा।' समग्रत: तकषी जी की सृजनात्मकता का ऊर्जा-स्रोत है– गहन मानववाद, जो उनकी आरंभिक रचनाओं से ही प्रत्यक्ष दृष्टिगोचर होता है और समय के साथ-साथ कठोर यथार्थ और सामाजिक सजगता से सुदृढ़ता के साथ अभिव्यक्ति पाता है।

कृतियाँ :

उपन्यास : त्यागत्तिन्नु प्रतिफलम्, पतितपंकजम्, परमार्थंगल, तलयोडु, अवण्डे स्मरणकल, चेम्पीन, चुक्कु, तेण्डिवर्यम्, रंटिटङयी, पेरिल्लाक्कथा, ओसेप्पिण्डे मक्कल, अनुभवंगल पालिच्चकल, आकशम्, अंबु पेण्णुंगल, जीवित्तम् सुन्दरामनु पक्षे, पेण्णयो पिरन्नाल, पुन्नप वयलारिनु, व्याकुल मातावु, कॅयर, बल्लूनुकल आदि

कहानियाँ : 20 कहानी-संग्रह तथा अन्य 200 कहानियाँ जो अभी संगृहीत नहीं हुई।

आत्मकथा : एण्डे बाल्यकला कथा, एण्डे वक्कील जीवितम्, ओर्मयुडे तीरंगलिल।

यात्रावृत्त : अमेरिकन तेरस्सीला।

नाटक : तोट्टिल्ला।

पुरस्कार : 1. साहित्य अकादमी पुरस्कार (1957), 2. ज्ञानपीठ पुरस्कार (1984), 3. पद्म भूषण (1985)

वक्तव्य

मैं किसी भाषा का विद्वान नहीं हूँ, न ही किसी विषय विशेष का ज्ञाता हूँ, मैं मात्र एक ग्रामीण हूँ जिसका पालन-पोषण केरल के कुट्टनाड क्षेत्र के एक दूरस्थ ग्राम में हुआ। मैं अपने जीवन को मात्र साहित्यिक क्रियाकलापों का जीवन संभवतः न कह सकूँ। परंपरा से मैं एक कृषक हूँ और आज भी खेती ही कर रहा हूँ। हमारे प्रदेश में 'रामायण', 'महाभारत' अथवा किसी महाकाव्य के पाठ की परंपरा रही है। मुझे याद है, बचपन में मैं अपने पिता से प्रतिदिन महाभारत का पाठ ध्यानपूर्वक सुना करता था। शायद यह मेरे लिए कथाकार बनने की एक प्रेरक शक्ति थी। आप जानते हैं, 'महाभारत' में हज़ारों कहानियाँ आयी हैं जिनमें सृष्टि के आरंभ अथवा उससे भी पहले के युग की कहानियाँ हैं और ये कहानियाँ 'द्वापर युग' की समाप्ति पर भी समाप्त नहीं होतीं बल्कि 'न आदि न अन्त' की मान्यता को व्यंजित करती हैं।

मेरे गाँव के परिवेश तथा पड़ोसी गाँवों के जीवन ने मुझे प्रभावित किया और मैंने अपने ही ढंग से जीवन की पुनः सृष्टि करने का प्रयत्न किया। मेरी अभिव्यक्ति का माध्यम ग्रामीणों की भाषा रही है। सीधी सी बात है, मैं जीवन और मनुष्य से प्रेम करता हूँ, अस्पृश्यों, दलितों, अभागों तथा निम्न वर्ग के जीवन ने मुझे लेखन के प्रारंभिक के वर्षों में प्रभावित किया। यह प्रतिक्रिया अत्यंत गहरी थी। मुझमें आक्रोश था।

जीवन, विचारधारा की अपेक्षा कहीं बड़ा और महान है। विचारधारा जीवन के लिए है जीवन विचारधारा के लिए नहीं। मेरा विचार है कि भारतीय ग्रामीण को एक विशिष्ट लाभ यह रहा है कि उसे अतीत से सीधे ही अत्यंत समृद्ध विरासत मिली है। निःसंदेह, समग्र इतिहास के दौरान बाह्य प्रभावों की भी कमी नहीं रही है। वह श्रेष्ठतम को सरलता से आत्मसात् कर सकता था और अवांछित को त्याग सकता था। यह कार्यशक्ति भी उसकी विरासत का एक अंग रही है।

मैंने अपने साहित्यिक जीवन का समीक्षात्मक सर्वेक्षण करने हेतु अपने अतीत की ओर देखा यह चित्र एकरस अथवा निरानन्द नहीं था। मुझे सन्तोष है कि इस सम्पूर्ण अवधि में मैं ग्रामीणजन, आम आदमी तथा शोषित कामगार के साथ रहा हूँ। मैं उनके सुख एवं दुख में भागीदार रहा, मैंने कभी उनका साथ नहीं छोड़ा। मैंने किसी करोड़पति के भव्य भवन, किसी बड़े व्यवसायी की बैठक, किसी महान उद्योगपति के बंगले अथवा किसी राजकीय प्रासाद का चित्रण नहीं किया है। एक ग्रामीण इन निर्मितियों पर मात्र आश्चर्य एवं विस्मय से टकटकी लगाकर देख भर सकता था कि वहाँ जो लोग रहते हैं, वे किस प्रकार के होंगे। यदि उसे भीतर ले जाया जाए तो वह चिकने साफ फर्श पर अथवा उस पर बिछे कीमती कालीनों पर चलने में संकोच अनुभव करेगा, क्योंकि उसके नंगे पैर मिट्टी और कीचड़ में सने हैं। उसे भय होगा कि वह कहीं फिसलकर गिर न जाए। वह भोजन की मेज पर गुमसुम हो जाएगा तथा स्वयं को दयनीय अनुभव करेगा। ये समस्त पक्ष साधारणतः इस अभिप्राय को स्पष्ट करते हैं कि ये भवन और बंगले तथा प्रासाद जीवन के अभिन्न अंग हैं। मैंने उन्हें अपने लेखन में छोड़ दिया है। मैं इस जीवन से परिचित नहीं रहा हूँ। यद्यपि मैंने इस जीवन को कई अवसरों पर एक सम्मानित अतिथि के रूप में देखा है। एक कलाकार के रूप में मुझमें इस जीवन के परिचय का अभाव है, यह एक कमी है। अंत में, भारतीय कथा लेखकों के लिए मैं एक सुझाव देना चाहूँगा।

आधुनिक कहानी तथा उपन्यास पश्चिम के उत्पाद हैं। पश्चिम में कहानी तथा उपन्यास वहाँ के जीवन से विकसित हुए हैं। हम लोग उनसे भिन्न तथा अतीत में कहानी कहने की हमारी स्वयं की अपनी तकनीक रही है। यह पद्य में थी। उदाहरण हैं– 'रामायण', 'महाभारत' तथा अन्य महाकाव्य। हम अपना ही कोई रूप विकसित करने का प्रयत्न क्यों नहीं करते? मैंने अपने नवीनतम उपन्यास 'कॅयर' में ऐसा करने का विनम्र प्रयास किया है। इस उपन्यास में पिछले 250 वर्षों के दौरान केरल के जीवन को उसकी समस्त अवस्थाओं के साथ विकसित किया गया है। इस कथावस्तु को किसी पश्चिमी रूप में समोया ही नहीं जा सकता था। शायद इस उपन्यास की 'नायिका' मनुष्य की भूमि के प्रति भूख है और इसका 'नायक' है समाज। मैंने इसे लिखना प्रारम्भ किया और पाया कि 'महाभारत' का प्रभाव ही अन्ततः मेरे बचाव के काम आया। उसके पात्र अतिमानव नहीं हैं। वे हमारे महान पूर्वज हैं, जिन्होंने जीवन जिया, संघर्ष किया और मर गये। यह मानव की कथा है। मैंने इस समय का चित्रण आठ पीढ़ियों के माध्यम से किया है। पश्चिमी प्रभाव अत्यधिक प्रबल था। मुझे सन्देह हुआ कि व्यास जैसा विश्व का महान आचार्य कथाकार भी मेरे द्वारा अपनाये गये मार्ग पर चलकर सफल हो सकता था। यदि आप यह मानें के कि मेरा सुझाव मनन योग्य नहीं है, तो कृपया इसे यहीं और अभी भूल जाइए।

(इस लेख के लिए ज्ञानपीठ पुरस्कार- संपादक बिशन टंडन, भारतीय ज्ञानपीठ प्रकाशन पुस्तक को आधार बनाया गया है। संपादक एवं प्रकाशन संस्था के प्रति कृतज्ञता ज्ञापित करता हूँ।)

भारत की खोज : चार

डॉ. निर्मला जैन

(भारत एक संश्लिष्ट सांस्कृतिक इकाई के रूप में अत्यंत प्राचीन, जीवंत और गतिशील उपमहाद्वीप रहा है जिसने अपनी मेधा से विश्व को चमत्कृत और समृद्ध किया है। जहाँ तक राजनीति की बात है तो यहाँ अलग अलग क्षेत्रों में अलग अलग साम्राज्य रहे जिनका वैसा ही इतिहास रहा जैसा अलग अलग देशों का होता है– संघर्ष का, विमर्श का और सहयोग का। ब्रिटिश शासन काल में इसे एक राजनीतिक रूप से संगठित इकाई का स्वरूप मिला जिसे हम अपने देश भारत, हिंदुस्तान और इंडिया के नाम से जानते हैं। जो आज भी अपनी पुरातनता और नवीनता, एकता और अनेकता के अद्‌भुत संगम के कारण विश्व के लिए एक आश्चर्य है।

इसे समग्रता में देखना, समझना और समेटना सरल नहीं। इसकी सफल और प्रामाणिक कोशिश की पंडित जवाहरलाल नेहरू ने और नाम दिया– 'भारत की खोज'। इसका लेखन उन्होंने भारत के स्वाधीनता आँदोलन में अंग्रेज सरकार द्वारा अहमदनगर किले में जेल रखे जाने के दौरान किया। आज भी भारत को समझने के लिए यह पुस्तक विश्व में समादृत है।

सामान्य पाठकों विशेषकर किशोरों के लिए इसका सार्थक और सरल संक्षिप्तीकरण किया हिन्दी की वरिष्ठ समालोचक और साहित्यकार डॉ. निर्मला जैन ने। हम उनका आभार स्वीकार करते हुए इसे विश्वा के युवा पाठकों के लिए धारावाहिक रूप में प्रस्तुत कर रहे हैं। –सं.)

महावीर और बुद्ध-वर्ण व्यवस्था

जैन धर्म और बौद्ध धर्म दोनों वैदिक धर्म से कटकर अलग हुए थे और उसकी शाखाएँ थे। पर उन्होंने वेदों को प्रमाण नहीं माना। तमाम और बातों में सबसे बुनियादी बात यह है कि आदि कारण के बारे में वे या तो मौन हैं या उसके अस्तित्व से इंकार करते हैं। दोनों अहिंसा पर बल देते हैं और ब्रह्मचारी भिक्षुओं और पुरोहितों के संघ बनाते हैं। उनके नज़रिए एक हद तक यथार्थवादी और बुद्धिवादी हैं। जैन धर्म का एक बुनियादी सिद्धांत यह है कि सत्य हमारे दृष्टिकोण की सापेक्षता में होता है। इसमें जीवन और विचार में तपस्या के पहलू पर बल दिया गया है।

जैन धर्म के संस्थापक महावीर और बुद्ध समकालीन थे और दोनों क्षत्रिय थे। बुद्ध की मृत्यु ई.पू. 544 में अस्सी वर्ष की आयु में हुई और तभी बौद्ध संवत् शुरू हुआ। इतिहासकारों ने बाद की तारीख यानी ई.पू. 487 दी। यह अजीब संयोग है कि मैं ये पंक्तियाँ बौद्ध संवत् 2488 की पहली तारीख को वैशाखी पूर्णिमा के दिन लिख रहा हूँ। बौद्ध साहित्य में लिखा है कि बुद्ध का जन्म वैशाख (मई-जून) के महीने में इसी पूर्णिमा के दिन हुआ था, इसी तिथि को उन्हें बोध प्राप्त हुआ था और अंत में उनका निर्वाण भी इसी तिथि को हुआ था।

बुद्ध में लोक-प्रचलित धर्म, अंधविश्वास, कर्म-कांड एवं पुरोहित-प्रपंच और उनके साथ जुड़े हुए निहित स्वार्थों पर हमला करने का साहस था। उन्होंने आध्यात्मिक, धर्म वैज्ञानिक नजरिए की तथा चमत्कारों, अलौकिक व्यापारों आदि की भी निंदा की। उनका आग्रह तर्क, विवेक और अनुभव पर था। उनका बल नैतिकता पर था, उनकी पद्धति मनोवैज्ञानिक विश्लेषण की थी, ऐसा मनोविज्ञान जिसमें आत्मा के लिए जगह नहीं थी।

बुद्ध ने वर्ण-व्यवस्था पर सीधा वार नहीं किया, लेकिन अपनी संघ-व्यवस्था में उन्होंने इसे कोई स्थान नहीं दिया।

यह विचित्र और महत्त्वपूर्ण बात है कि भारतीय इतिहास के लंबे

सांची स्तूप

दौर में पुरोहित-प्रपंच और वर्ण-व्यवस्था की कठोरता के विरुद्ध बड़े लोगों ने बार-बार चेतावनी दी है, फिर भी धीरे-धीरे वर्ण-व्यवस्था का विकास और विस्तार हुआ है। इसने भारतीय जीवन के हर पहलू को अपने शिकंजे में जकड़ लिया है। जात के विरोधियों के बहुत से अनुयायी हुए, पर समय के साथ उनके समुदाय की अपनी एक अलग जात बन गई। जैन धर्म, जो अपने मूल धर्म के विरोध में खड़ा हुआ था, जात के प्रति सहिष्णु था और खुद उसने अपने को उसके अनुरूप बना लिया था। इसलिए आज भी यह जिंदा है और जारी है तो लगभग हिंदू धर्म की एक शाखा के रूप में। बौद्ध धर्म ने जाति-व्यवस्था को स्वीकार नहीं किया। वह अपने विचारों और दृष्टिकोण में ज़्यादा स्वतंत्र रहा। अंततः वह भारत से बाहर निकल गया, गोकि भारत और हिंदूवाद पर उसका गहरा प्रभाव पड़ा।

बुद्ध की शिक्षा

बुद्ध का संदेश उन भारतीयों के लिए बहुत नया और मौलिक था जो ब्रह्मज्ञान की गुत्थियों में डूबे रहते हैं। बुद्ध ने अपने शिष्यों से कहा, "सभी देशों में जाओ और इस धर्म का प्रचार करो।" इस धर्म में सब जातियाँ आकर इस तरह मिल जाती हैं जैसे समुद्र में नदियाँ। उन्होंने

सबके लिए करुणा का, प्रेम का संदेश दिया क्योंकि "इस संसार में घृणा का अंत घृणा से नहीं होता, घृणा का अंत प्रेम से होता है।" अतः "मनुष्य को क्रोध पर दया से और बुराई पर भलाई से काबू पाना चाहिए।" यह सदाचार और आत्मानुशासन का आदर्श था। "युद्ध में भले ही कोई हज़ार आदमियों पर विजय पा ले, पर जो अपने पर विजय पाता है, सच्चा विजेता वही होता है। मनुष्य की जाति जन्म से नहीं बल्कि केवल कर्म से तय होती है।"

उन्होंने यह उपदेश न किसी धर्म के समर्थन के आधार पर और न ईश्वर या परलोक का हवाला देकर दिया। उन्होंने विवेक, तर्क और अनुभव का सहारा लिया और लोगों से कहा कि वे अपने मन के भीतर सत्य की खोज करें। सत्य की जानकारी का अभाव सब दुखों का कारण है। ईश्वर या परब्रह्म का अस्तित्व है या नहीं, उन्होंने नहीं बताया। वे न उसे स्वीकार करते हैं न इंकार। जहाँ जानकारी संभव नहीं है वहाँ हमें निर्णय नहीं देना चाहिए। इसलिए हमें अपने आपको उन्हीं चीजों तक सीमित रखना चाहिए जिन्हें हम देख सकते हैं और जिनके बारे में हम निश्चित जानकारी हासिल कर सकते हैं।

बुद्ध की पद्धति मनोवैज्ञानिक विश्लेषण की पद्धति थी और इस बात की जानकारी हैरत में डालने वाली है कि अधुनातन विज्ञानों के बारे में उनकी अंतर्दृष्टि कितनी गहरी थी।

जीवन में वेदना और दुख पर बौद्ध धर्म में बहुत बल दिया गया है। बुद्ध जिन 'चार आर्य सत्यों' का निरूपण किया है उनका संबंध दुख का कारण, दुख के अंत की संभावना और उसे समाप्त करने के उपाय से है।

दुख की इस स्थिति के अंत से 'निर्वाण' की प्राप्ति होती है। बुद्ध का मार्ग मध्यम मार्ग था। यह अतिशय भोग और अतिशय तप के बीच का रास्ता है। अपने शरीर को कष्ट देने के अनुभव के बाद उन्होंने कहा, "जो व्यक्ति अपनी शक्ति खो देता है वह सही रास्ते पर नहीं बढ़ सकता।" यह मध्यम मार्ग आर्यों का अष्टांग मार्ग था– सही विश्वास, सही आकांक्षाएँ, सही वचन, सही आचरण, जीवनयापन का सही ढंग, सही प्रयास, सही विचार और सही आनंद।

बुद्ध ने अपने शिष्यों को वही बातें बताईं जो उनके विचार से वे लोग समझ सकते थे और उनके अनुसार आचरण कर सकते थे। कहा जाता है कि एक बार उन्होंने अपने हाथ में कुछ सूखी पत्तियाँ लेकर अपने प्रिय शिष्य आनंद से पूछा कि उनके हाथ में जो पत्तियाँ हैं, उनके अलावा भी कहीं कोई है या नहीं? आनंद ने उत्तर दिया–"पतझड़ की पत्तियाँ सब तरफ़ गिर रही हैं और वे इतनी हैं कि उनकी गणना नहीं की जा सकती।" तब बुद्ध ने कहा–"इसी तरह मैंने तुम्हें मुट्ठी भर सत्य दिया है, किंतु इसके अलावा कई हज़ार और सत्य ऐसे हैं, जिनकी गणना नहीं की जा सकती।"

बुद्ध-कथा

'बुद्ध' की वह संकल्पना जिसे प्यार से भरे अनगिनत हाथों ने पत्थर, संगमरमर और काँसे में ढालकर आकार दिया, भारतीयों के विचारों की समग्र आत्मा की, या कम-से-कम उसके एक तेजस्वी पक्ष का प्रतीक है। कमल के फूल पर बैठे हुए– शांत और धीर, वासनाओं और लालसाओं से परे, इस संसार के तूफ़ानों और संघर्षों से दूर वे इतनी दूर पहुँच से इतने परे मालूम होते हैं जैसे उन्हें पाना असंभव हो। लेकिन जब हम उन्हें दोबारा देखते हैं तो उनकी आकृति जीवन-शक्ति से भरी जान पड़ती है।

सारनाथ स्तूप

युग पर युग बीतते जाते हैं पर बुद्ध हमसे बहुत दूर नहीं मालूम होते। उनकी वाणी हमारे कान में धीमे स्वर से कहती है कि हमें संघर्ष से भागना नहीं चाहिए बल्कि शांत-दृष्टि से उनका मुकाबला करना चाहिए तथा जीवन में विकास और प्रगति के और बड़े अवसरों को देखना चाहिए।

बुद्ध के बारे में सोचते हुए आज भी हम एक जीती-जागती, थरथराहट पैदा करने वाली अनुभूति से गुज़रते हैं। उस राष्ट्र और जाति के पास निश्चय ही समझदारी और आँतरिक शक्ति की गहरी संचित निधि होगी जो ऐसे भव्य आदर्श को जन्म दे सकती है।

चंद्रगुप्त और चाणक्य – मौर्य साम्राज्य की स्थापना

भारत में बौद्ध धर्म का प्रचार धीरे-धीरे हुआ। मूल रूप में यह क्षत्रिय आँदोलन था और शासक वर्ग तथा पुरोहितों के बीच संघर्ष का प्रतिनिधित्व करता था।

पश्चिमोत्तर प्रदेश पर सिकंदर के आक्रमण से इस विकास को आगे बढ़ाने में विशेष मदद मिली और दो ऐसे विलक्षण व्यक्ति सामने आए जिन्होंने बदलती हुई परिस्थितियों का लाभ उठाते हुए उन्हें अपनी मर्जी के मुताबिक ढाल लिया। ये थे चंद्रगुप्त मौर्य और उनके मित्र, मंत्री और सलाहकार चाणक्य। इन दोनों का मेल बहुत कारगर साबित हुआ। दोनों मगध के उस शक्तिशाली नंद साम्राज्य से निकाल दिए गए थे जिसकी राजधानी पाटलीपुत्र (आधुनिक पटना) थी। दोनों पश्चिमोत्तर प्रदेश में तक्षशिला गए और उन यूनानियों के संपर्क में आए जिन्हें सिकंदर ने वहाँ नियुक्त किया था। चंद्रगुप्त की भेंट खुद सिकंदर से हुई थी।

चंद्रगुप्त और चाणक्य ने राष्ट्रीयता का पुराना पर चिर नवीन नारा बुलंद करके विदेशी आक्रमणकारी के विरुद्ध लोगों को उत्तेजित किया। यूनानी सेना को खदेड़कर तक्षशिला पर अधिकार कर लिया गया। राष्ट्रीयता की पुकार सुनकर बहुत से लोग चंद्रगुप्त के साथ हो गए और उन्हें साथ लेकर चंद्रगुप्त पटना तक पहुँच गया। सिकंदर की मृत्यु के दो ही वर्ष में उसने पाटलीपुत्र पर अधिकार करके मौर्य साम्राज्य की स्थापना की। लिखित इतिहास में पहली बार एक विराट केंद्रीय राज्य की स्थापना हुई। पाटलीपुत्र इस महान साम्राज्य की राजधानी थी।

यह नया राज्य था कैसा? सौभाग्य से हमें इसका पूरा ब्यौरा

मिलता है– भारतीय भी और यूनानी भी। एक विवरण सिल्यूकस के राजदूत मेगस्थनीज़ ने छोड़ा है और दूसरा है कौटिल्य का *अर्थशास्त्र* जो कहीं अधिक महत्त्वपूर्ण 'राजनीतिशास्त्र' है और उसी समय की रचना है। कौटिल्य चाणक्य का ही दूसरा नाम है। वह हर दृष्टि से बड़ा आदमी था– बुद्धिमानी में भी और कर्मठता में भी। इस युग के बारे में एक प्राचीन भारतीय नाटक है– *मुद्राराक्षस*। इस नाटक में चाणक्य की तसवीर उभरती है। साहसी और षड़यंत्री, अभिमानी और प्रतिशोधी, जो न कभी अपमान को भूलता है न अपने लक्ष्य को ओझल होने देता है। दुश्मन को धोखा देने और पराजित करने के लिए वह हर तरीके का इस्तेमाल करता है। है। वह साम्राज्य की बागडोर हाथ से सँभाले रहता है और सम्राट को स्वामी की तरह नहीं बल्कि एक प्रिय शिष्य की तरह देखता है। अपने जीवन में वह सादा और तपस्वी है, ऊँचे पदों की शान-शौकत में उसकी दिलचस्पी नहीं है। जब वह अपनी शपथ पूरी कर लेता है और अपने उद्देश्य में सफल हो जाता है तो सेवानिवृत्त होकर चिंतन-मनन का जीवन बिताना चाहता है। अपने लक्ष्य को पूरा करने के लिए शायद ही कोई ऐसी बात रही हो जिसे करने में चाणक्य को किसी प्रकार का संकोच होता।

चाणक्य के *अर्थशास्त्र* में व्यापक स्तर पर अनेकानेक विषयों पर लिखा गया है। उसमें शासन के सिद्धांत और व्यवहार के लगभग सभी पहलुओं पर विचार किया गया है। इसमें चंद्रगुप्त की विराट सेना का विस्तार से वर्णन किया गया है। चाणक्य का कहना है कि केवल संख्या से कुछ नहीं होता, अनुशासन और उचित नेतृत्व के अभाव में वे बोझ बन जाते हैं। इसमें रक्षा और किलेबंदी के बारे में भी बताया गया है।

पुस्तक में चर्चित अन्य विषयों में व्यापार और वाणिज्य, कानून और न्यायालय, नगर-व्यवस्था, सामाजिक रीति-रिवाज, विवाह और तलाक, स्त्रियों के अधिकार, कर और लगान, कृषि, खानों और कारखानों को चलाना, दस्तकारी, मंडियाँ, बागवानी, उद्योग-धंधे, सिंचाई और जलमार्ग, जहाज़ और जहाजरानी, निगमें, जन-गणना, मत्स्य उद्योग, कसाई खाने, पासपोर्ट और जेल – सब शामिल हैं। इसमें विधवा विवाह को मान्यता दी गई है और विशेष परिस्थितियों में तलाक को भी।

अपने राज्याभिषेक के समय राजा को इस बात की शपथ लेनी पड़ती थी कि वह प्रजा की सेवा करेगा– उसका सुख उसकी प्रजा के सुख में है, उसकी खुशहाली में है, वह उसी को अच्छा समझेगा जो उसकी प्रजा को अच्छा लगेगा, उसे नहीं जो खुद को अच्छा लगे। यदि राजा उत्साही होगा, तो प्रजा समान रूप से उत्साही होगी। सार्वजनिक काम राजा की मर्जी के मोहताज नहीं होते, उसे खुद हमेशा इनके लिए तैयार रहना चाहिए। यदि कोई राजा अनीति करता है तो उसकी प्रजा को अधिकार है कि उसे हटाकर किसी दूसरे को उसकी जगह बैठा दे।

अशोक

273 ई.पू. में अशोक इस महान साम्राज्य का उत्तराधिकारी हुआ। इससे पहले वह पश्चिमोत्तर प्रदेश का शासक रह चुका था, जिसकी

अशोक के अभिलेख

राजधानी, विश्वविद्यालय की नगरी तक्षशिला थी। उस समय साम्राज्य के भीतर भारत का बहुत बड़ा भाग आ गया था और उसका विस्तार मध्य एशिया तक हो चुका था। केवल दक्षिण-पूर्व और दक्षिण का एक भाग उसके अधिकार क्षेत्र में नहीं आ पाए थे। संपूर्ण भारत को एक शासन व्यवस्था के मातहत इकट्ठा करने के पुराने सपने ने अशोक को प्रेरित किया और उसने तत्काल पूरबी तट के कलिंग प्रदेश को जीतने की ठान ली।

कलिंग के लोगों के बहादुरी से मुकाबला करने के बावजूद अशोक की सेना जीत गई। इस युद्ध में भयंकर कत्लेआम हुआ। जब इस बात की खबर अशोक को मिली तो उसे बहुत पछतावा हुआ और युद्ध से विरक्ति हो गई। बुद्ध की शिक्षा के प्रभाव से उसका मन दूसरे क्षेत्रों में विजय हासिल करने और साहसिक काम करने की ओर घूम गया।

अशोक के विचारों और कर्मों के बारे हमें फ़रमानों से जानकारी मिलती है जो उसने जारी किए और जो पत्थर और धातु पर खोदे गए। ये फ़रमान पूरे भारत में फैले हैं और अब भी मिलते हैं।

मथुरा से प्राप्त महावीर की प्रतिमा

कलिंग को साम्राज्य में मिलाए जाने के ठीक बाद ही महामहिम सम्राट ने धर्म के नियमों का उत्साहपूर्वक पालन, उन नियमों के प्रति प्रेम और उसको (धर्म को) अंगीकार करना आरंभ कर दिया। उनके एक फ़रमान में कहा गया है कि अशोक अब आगे किसी प्रकार की हत्या या बंदी बनाए जाने को सहन नहीं करेगा। कलिंग में मरने और बंदी बनाए जाने वाले लोगों के सौवें-हज़ारवें हिस्से को भी नहीं। सच्ची विजय कर्तव्य और धर्म पालन करके लोगों के हृदय को जीतने में है।

तक्षशिला बुद्ध प्रतिमा

फ़रमान में आगे कहा गया है–"इसके अलावा, यदि कोई उनके साथ बुराई करेगा तो उसे भी जहाँ तक संभव होगा महामहिम सम्राट को झेलना होगा। महामहिम सम्राट की यह आकांक्षा है कि जीव मात्र की रक्षा हो, उनमें आत्म-संयम हो, उन्हें मन की शांति और आनंद प्राप्त हो।"

इस अद्भुत शासक ने, जिसे आज भी भारत और एशिया के बहुत से दूसरे भागों में प्यार से याद किया जाता है, अपने आपको बुद्ध की शिक्षा के प्रचार में, नेकी और सद्भाव के काम में तथा प्रजा के हित के लिए सार्वजनिक कार्यों के प्रति समर्पित कर दिया। उसने ऐलान कर दिया था कि वह इनके लिए हमेशा तैयार है। हर स्थान पर और हर समय, सरकारी कर्मचारी जनता के कार्यों के बारे में उसे बराबर सूचना देते रहें, चाहे जिस समय और जहाँ भी हो वह लोक-हित के लिए अवश्य काम करेगा।

खुद कट्टर बौद्ध होने पर भी उसने दूसरे धर्मों को बराबर आदर और महत्त्व दिया।

अशोक बहुत बड़ा निर्माता भी था। उसने अपनी कुछ बड़ी इमारतों को बनाने में मदद के लिए विदेशी कारीगरों को रख छोड़ा था। यह नतीजा एक जगह इकट्ठे बने स्तंभों के डिज़ाइन से निकाला गया है जो पर्सिपोलिस की याद दिलाते हैं। लेकिन इस शुरू की मूर्तिकला और दूसरे अवशेषों में भी भारतीय कला-परंपरा की विशेषताएँ दिखाई पड़ती हैं।

इकतालीस साल तक अनवरत शासन करने के बाद ई.पू. 232 में अशोक की मृत्यु हो गई। एच.जी. वेल्स ने अपनी आउटलाइन ऑफ़ हिस्ट्री में उसके बारे में लिखा है कि बादशाहों के दसियों हज़ार नामों में जिनसे इतिहास के पृष्ठ भरे हैं, जिनमें बड़े-बड़े राजे-महाराजे, शहंशाह और नामीगिरामी शासक शामिल हैं, अशोक का नाम अकेला सितारे की तरह चमक रहा है। वोल्गा से जापान तक आज भी उसका नाम आदर से लिया जाता है।

प्रस्थान की कविता

राकेश अचल

गा-बजाकर कोई नहीं जाता।
सब अचानक जाते हैं
मैं भी जाऊंगा एक दिन
लिखते, लिखाते
पढ़ते, पढ़ाते
मेरे जाने की खबर भी
चेहरे की किताब अर्थात फेसबुक ही
आपको देगी
जैसे उसने खबर दी है
वीरेंद्र भदौरिया के जाने की
अखबार में विज्ञापन देना मुझे पसंद नहीं
आजकल के अखबार
मरने की खबर हो या जीने की
बिना पैसे लिए नहीं छापते
नये किस्म की नैतिकता का जमाना है भाई
जैसे चुनाव में
उपलब्धि हो या बायोडाटा
घोषणा पत्र हो या आभार
'पेड न्यूज़' माना जाता है
मेरे जाने की खबर भी
बिना पैसे के नहीं छपने वाली
'पेड न्यूज़' की तरह
कोई नहीं लिखने वाला
छोटा-बडा स्मृति शेष मेरे बारे में
वैसे भी
मेरे बारे में कोई क्या लिखेगा?
मैने न चाय बेची
न गटर की गैस का इस्तेमाल किया
मै बस लिखता रहा हर सुबह
ठीक उसी तरह
जैसे लोग अल - सुबह
जागकर जाते हैं दिशा -मैदान
करते हैं दातौन-कुल्ला
पीते हैं चाय
पढते हैं अखबार
वाट्स अप पर भेजते हैं संदेश
शुभप्रभात या शुभरात्रि के
लेकिन मै वाट्सअप पर संदेश नहीं
आलेख भेजता हूँ।
बिना डरे, बिना थके
जिस दिन लेख न आए
समझ लीजिये
इति मित्थम
राम का नाम ही सत्य है और
जगत मिथ्या।

बीबी आयशा

पूर्वा भारद्वाज

इसे हमने निरंतर संस्था की 'इतिहास रचती आवाज़ें' शीर्षक किताब से साभार लिया है जो स्त्री शिक्षा के इतिहास पर केंद्रित है। इसमें अलग अलग दौर के स्त्री स्वर को सुनने की कोशिश की गई है और यह मुमकिन हुआ है चुनींदा ऐतिहासिक चरित्रों-व्यक्तियों के माध्यम से। उन सबको उस दौर के चरित्र और दबावों की रोशनी में देखने-परखने का प्रयास किया गया है। इतिहास और मिथक की घुली-मिली सीमा रेखा को भी समझने की कोशिश की गई है। उन ऐतिहासिक चरित्रों--व्यक्तियों के महिमामंडन के क्रम में जो अनेक किंवदंतियाँ- कहानियाँ प्रचलित होती हैं, उनको भी ध्यान में रखा गया है। खासकर स्त्रियों के जीवन की चंद घटनाओं के इर्द गिर्द जो किस्से गढ़ लिए जाते हैं उनको विश्लेषणात्मक दृष्टि से देखने का प्रयत्न किया गया है। इसलिए कि किस्से गढ़ते-गढ़ते ज्ञान और शिक्षा के क्षेत्र में स्त्रियों का असल योगदान क्या और कैसा था, यह अक्सर ओझल हो जाता है।

स्त्री शिक्षा के इतिहास में समावेशी शिक्षा और संस्थानगत शिक्षा के क्षेत्र में बीबी आयशा का योगदान स्मरणीय है। 1887 में अमृतसर में नॉर्थ इंडिया इंडस्ट्रियल होम फ़ॉर द ब्लाइंड (North India Industrial Home For The Blind) की नींव डाली गई थी। इसकी पहली नियमित शिक्षिका थीं बीबी आयशा।

1861 में एक मुसलमान परिवार में जनमी आयशा लाहौर से थीं। तीन साल की उम्र में चेचक में उनकी देखने की क्षमता जाती रही। तब तक विशेष आवश्यकता वाले बच्चों की शिक्षा की व्यवस्था स्कूलों में नहीं थी। 10 साल की उम्र में लाहौर के एक स्कूल में बड़ी कठिनाई से आयशा का दाखिला हुआ। यह स्कूल हिन्दुस्तानी लड़कियों का था जहाँ शिक्षिकाओं की ट्रेनिंग भी होती थी। उनमें मिस एमा फुलर नामक शिक्षिका का बहुत सहयोग आयशा को मिला। उनकी लगन से ही आयशा की पढ़ाई मुमकिन हो पाई थी। वैसे मिस फुलर को कोई विशेष प्रशिक्षण नहीं मिला था, मगर प्यार और लगाव ने देखने में अक्षम आयशा को पढ़ाने-सिखाने की तरकीब उन्हें सिखा दी थी। उन्हीं से आयशा ने ढेर सारी बाइबिल की कहानियाँ और वचन सीखे, उन्हें कंठस्थ भी किया। आयशा भूगोल और भाषा के ज्ञान में भी पक्का हुई।

1875 में आयशा के पिता नहीं रहे। अब किशोरी आयशा पर भाइयों ने शादी का दबाव डालना शुरू किया। एक अंधे व्यक्ति से रिश्ता जोड़ा जा रहा था जो कि मौलवी का काम करता था। यह आयशा को कतई मंजूर नहीं था तो उसने मिस फुलर से मदद माँगी। शिक्षिका ने प्रयास किया, लेकिन घरवालों को मनाना इतना आसान नहीं था। अंततः आयशा ने घर छोड़ दिया। मिस फुलर के सहयोग से वे लुधियाना के मिशन बोर्डिंग स्कूल में आ गईं। प्रभावित होकर आयशा ने ईसाई धर्म कबूला और मिस एशो कहलाईं। लुधियाना में उनके चार साल गुज़रे। उन्होंने हाथ की कारीगरी सीखी और उसमें निपुण हुईं। संभवतः वहीं उन्होंने विशेष रूप से प्रशिक्षित विदेशी शिक्षिकाओं से मून लिपि और ब्रेल लिपि सीखी थी। ब्रेल लिपि में कागज़ पर उभरे हुए बिंदुओं से अक्षर का आकार पहचानते हैं, जबकि मून लिपि में घुमावदार आकृति, रेखा और कोण होते हैं।

1880 का Miss Tucker का लिखा एक दस्तावेज मिलता है जिसमें एक मून लिपि पढ़नेवाली हिन्दुस्तानी लड़की का ज़िक्र है। पूरी संभावना है कि वह आयशा उर्फ़ मिस एशो के बारे में है। उसके

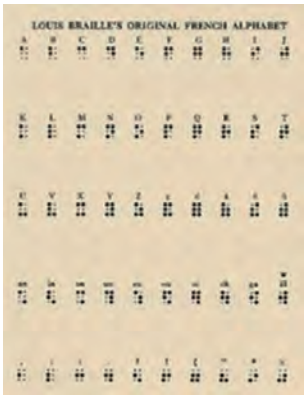

अनुसार मिस एशो अमृतसर के एक संस्थान में तीन महीने रहीं।

1880 में ही अमृतसर में सेंट कैथरीन अस्पताल खुला था। उस अस्पताल की प्रभारी थीं मिस सारा ह्यूलेट (Sara Hewlett)। बचपन में एक साल तक चेचक की वजह से मिस सारा की आँखों की रोशनी चली गई थी। इस अनुभव ने उन्हें अंधी लड़कियों की शिक्षा के लिए कुछ ठोस कदम उठाने का हौसला दिया था। उन्होंने अपनी सहयोगी मिस फ्रांसिस शार्प (Frances Sharp) के साथ मिलकर अंधी लड़कियों के लिए एक स्कूल खोलना तय किया। इस योजना के तहत 1886 में अमृतसर के सेंट कैथरीन अस्पताल के एक हिस्से में बुनाई की कक्षा शुरू की गई। उसमें चंद अंधी औरतें बुनाई करने आती थी जिसके एवज में कुछ पैसा मिलता था। फ्रांसिस की बहन ऐनी शार्प इस योजना से प्रभावित होकर इंग्लैंड से अमृतसर आईं, लेकिन तब तक बुनाई कक्षा बंद हो गई थी। ऐनी शार्प टोकरी बनाने की कला में दक्ष थीं तो नए सिरे से 1887 में इंडस्ट्रियल होम शुरू किया गया। इस इंडस्ट्रियल होम में जब मिस एशो आईं तो जल्दी ही उसकी धुरी बन गईं। हालाँकि वे इस होम में कैसे पहुँचीं, इसको लेकर बहुत स्पष्टता नहीं है।

मिस एशो की उपस्थिति ने इस इंडस्ट्रियल होम को ठहराव दिया। होम में बेंत की टोकरी बनाना, बुनाई आदि के काम के साथ लिखना-पढ़ना, हिसाब-किताब करना सब सिखाया जाता था। अपने समान हिन्दुस्तानी अंधी शिक्षिका के रूप में मिस एशो को देखकर

अन्य लड़कियों का विश्वास का रिश्ता बना। उनका लड़कियों के शिक्षण-प्रशिक्षण का तरीका अलग और व्यावहारिक था। उपयोगिता और बिक्री के लिहाज से लड़कियों को पायदान (doormat) बनाने की कारीगरी का सुझाव एशो ने ही दिया था जो बहुत कारगर साबित हुआ था।

एशो के हाथ की कारीगरी विद्यार्थियों को मून और ब्रेल लिपियाँ सिखाने में काम आईं और हाथ का सामान बनाना सिखाने में भी। यह मॉडेल अंधी लड़कियों को आत्मनिर्भर होने का मौका देता है जो कि विकलांग लोगों के प्रति दया, करुणा, दान और कृपा से अलग नज़रिया था। यह उनकी गरिमा और उनकी स्वायत्तता की रक्षा करता है।

अप्रैल, 1903 में यह इंडस्ट्रियल होम अमृतसर के शोर-शराबे से दूर राजपुर (देहरादून) में आ गया था। बाद में शार्प मेमोरियल स्कूल नाम से यह प्रख्यात हुआ। तुलनात्मक रूप से राजपुर शांत इलाका था और यहाँ जगह भी अधिक थी। अब यह स्वतंत्र संस्थान था, मिशनरी सहयोग पर निर्भर नहीं था।

संयोग से अमृतसर से राजपुर आने के 15 दिन बाद ही हैजे से एनी शार्प की मृत्यु हो गई। लेकिन मिस एशो सहित बाकी साथियों ने स्कूल के काम को रुकने नहीं दिया। एनी शार्प का बाकी परिवार भी मदद करता रहा। दूसरा बुरा संयोग यह रहा कि 1917 में ऐनी शार्प की बहन मारिया शार्प राजपुर में स्कूल सँभालने आईं और हफ़्ते भर में हैजे से उनकी भी मृत्यु हो गई। मिस एशो का शिक्षण-प्रशिक्षण इन मुश्किल परिस्थितियों में भी चलता रहा। वे वहाँ लगभग 40 साल तक पढ़ाती रहीं।

आगे चलकर मिस एशो के नेतृत्व में अनेक स्थानीय लोगों ने हाथ से भाषा, गणित आदि की विशेष शिक्षण सामग्री बनाई। पूरे देश के उन संस्थानों में जहाँ अंधे विद्यार्थी थे वहाँ अमृतसर से शिक्षण सामग्री भेजी जाती थी। इस शिक्षण सामग्री में मून लिपि और ब्रेल लिपि दोनों का इस्तेमाल किया जाता था। यह शिक्षा की मुहिम थी।

प्रायः हमने देखा है कि राज्य या समुदाय या व्यक्ति विशेष जब समावेशी शिक्षा की बात करते हैं तो उनका रवैया 'दया' और 'सहानुभूति' का होता है, अधिकार या समानुभूति का नहीं। लेकिन Industrial Home में दृष्टिबाधित लोगों की ज़रूरत और उनके सपने पूरे करने के मकसद से शिक्षा का जतन किया गया था। इस दिशा में 19वीं सदी में विकलांग बच्चों के लिए ही नहीं, लड़कियों, विधवाओं, दलितों, अल्पसंख्यकों जैसे और अधिक वंचित समुदाय के लिए आवासीय शिक्षा व्यवस्था के प्रति झुकाव का अपना तर्क था। सामाजिक विरोध का सामना करने में शिक्षा संस्थानों की ऊर्जा जाती ही थी, लेकिन उनको चलाने की व्यावहारिक चुनौतियाँ भी थीं– प्रशिक्षित शिक्षक-शिक्षिका उपलब्ध होना, आवश्यक शिक्षण सामग्री जुटाना, विद्यार्थियों की पर्याप्त संख्या होना।

इस लिहाज से अमृतसर का इंडस्ट्रियल होम एक व्यवस्थित कदम था। इसके पहले अठारहवीं सदी के पूर्वार्ध में 'मद्रास मिलिट्री ऑरफ़न एसाइलम' नाम से मद्रास में और 'बंगाल मिलिट्री ऑरफ़न एसाइलम' नाम से कलकत्ता में स्कूल था। यह सैनिकों के अनाथ बच्चों के लिए स्कूल था जिसमें अंधे बच्चों को पढ़ाने की भी व्यवस्था थी। उनकी शिक्षा का माध्यम पहले Lucas reading system था। अंग्रेज़ शिक्षक Thomas Mark Lucas ने कुछ उभरी हुई आकृतियों से अंधे व्यक्तियों के लिए यह लिपि बनाई थी। जल्दी ही अंग्रेज़ शिक्षक विलियम मून द्वारा विकसित मून लिपि और फ्रेंच लुई ब्रेल द्वारा विकसित ब्रेल लिपि ने इसकी जगह ले ली।

इधर Mrs Jane Leupolt (पहले Chambers Jones) नामक विदेशी ने पहले वर्धमान (बंगाल) और फिर बनारस में लड़कियों की शिक्षा को लेकर काफी काम किया था। उनमें अंधी लड़कियाँ भी थीं। उनके साथ एक हिन्दुस्तानी अंधी औरत भी काम कर रही थीं जिन्होंने उभरे अक्षरों वाली किताबों से पढ़ना-पढ़ाना सीखा था। उनका नाम तक अज्ञात है। काफ़ी सालों बाद Mrs Jane Leupolt ने लगातार प्रयास के बाद मून लिपि में हिंदी लिखने की विधि विकसित कर ली थी। 1867 में उन्हें आगरा में ईनाम भी मिला था। उन्होंने पहली हिन्दुस्तानी शिक्षिका की मौत के बाद दूसरे Mr Titus को प्रशिक्षित किया जो अंधे बच्चों और अन्य विकलांग बच्चों को पढ़ाते थे।

मिशनरी लोगों का दृष्टिबाधित बच्चों की शिक्षा की दिशा में महत्त्वपूर्ण योगदान रहा है। 1860 के दशक में आगरा के पास सिकंदरा में 69 अनाथ लड़कियों की सांस्थानिक शिक्षा का दस्तावेज मिलता है। उनमें 12 आंशिक या पूर्ण रूप से दृष्टिहीन थीं। उन छात्राओं में से कुछ ने आगे जाकर शिक्षण का काम किया।

अमृतसर में 1851-56 में Mrs. Fitzpatrick ने "Blind Sarah" नाम से मशहूर एक हिन्दुस्तानी ईसाई लड़की को प्रशिक्षित किया था। वह उर्दू में उभरी आकृति वाली किताब पढ़ पाती थीं और उससे पढ़ाती भी थीं। इस तरह अंधे बच्चों को पढ़ाने के छिटपुट प्रयास लगातार होते रहे है, मगर ऐसे प्रयासों को ठोस रूप मिला मिस ऐशो से।

पढ़ते पढ़ाते

विश्व प्रसिद्ध पुस्तक Asian Drama के लेखक डॉ. गुन्नार मिर्डल ने कहा था कि मध्य युग में पश्चिमी साम्राज्यवादी चार हथियारों से लैस थे: जहाज, बाइबिल, तलवार और मानवशास्त्र।

मुझे तुम पर यकीन था

लेखक की प्रथम कहानी का हंगेरियन से अनुवाद

इन्दुकांत आँगिरस

दरबान को दोपहर से पहले ही नए कर्मचारी के आने की सूचना मिल चुकी थी। काउंटी में तूफ़ान आने से बहुत पहले ही नए कर्मचारी उस लड़के ने परिसर के खड़खड़ाते हुए दरवाज़े को खोला। हिचकचाते हुए गला साफ किया और कंपकपाती आवाज़ में कहा–"शुभ संध्या।" दरबान ने तब भी उस लड़के की ओर नहीं देखा और झुंझलाये अंदाज़ में हाथ हिलाकर कर टालते हुए कहा–"हाँ, हाँ, मुझे पता है।"

करासनाहोरकई लास्लो
(इस वर्ष के नोबेल पुरस्कार विजेता)

लेकिन तभी, बाहर तूफ़ान बेकाबू हो रहा था, जिसने पिछले कुछ दिनों की ग्रीष्म कालीन गर्म हवा को कुछ ही घंटों के भीतर लगभग जमाव बिंदु के करीब शीतल कर अपनी अपार शक्ति का प्रदर्शन कर दिया था, तूफ़ानी बादलों की वजनी चादर लम्बे सफ़र के बाद थके हुए झुंड की तरह, भारी और नीची होकर ग्रामीण इलाकों पर छा गई थी, जिन्हें डूबते सूरज की अंतिम किरणों ने धरती पर पसरने से रोक दिया था,जिसके चलते रौशनी बेबस होकर शून्य में विलीन हो गयी थी। अन्धकार की दोहरी परत के बाद वातावरण में भयंकर, गर्जन-भरी आवाज़ों में लिपटा एक डरावना सन्नाटा पसर गया था। इस सन्नाटे में, तारों रहित आकाश के नीचे, सड़क के दोनों ओर झाड़ियों से आ रही आवाज़ों के बीच दबकर, लड़का कीचड़ भरी कच्ची सड़क पर बस्ती की ओर बोझिल क़दमों से चल रहा थ। इस अजनबी जगह में जल्दबाज़ी भरे, डगमगाते क़दमों से वह ऐसे चल रहा था जैसे अपनी टुकड़ी से अलग हुआ कोई सिपाही, बिना नक्शे या कम्पास के भटक गया हो। अंततः एक ऐसे इलाके में रात गहरा गई थी जहाँ यक़ीनन उसके लिए यह जानना असंभव था कि वह किन लोगों के बीच था। उसके सिर के ऊपर बिजली चमक रही थी और उस घोर अँधेरे में हर पल वो रोशनी की चमक ही उसे रास्ता दिखाती थी, क्योंकि वह कुछ भी नहीं देख पा रहा था, यहाँ तक कि अपने पैरों तले की ज़मीन भी नहीं। अब पीछे मुड़ने का कोई सवाल ही नहीं था: जिस तीसरे दर्जे की मैकदाम सड़क पर वह बस से उतरा और यार्ड की ओर जाने वाले रास्ते पर मुड़ा, वह कम से कम आधे घंटे की पैदल दूरी पर थी, लेकिन जब उसे दो महीने की निष्फल खोज के बाद अंततः काम और रहने की जगह मिल गई थी, तो वह पीछे क्यों मुड़ता: उसे थी एक बिस्तर कि दरकार जहाँ वह अपनी रात की की ड्यूटी के बाद थोड़ा आराम कर सके। पूरी तरह पानी में भीगा हुआ वह यार्ड में पहुँचा और दरबान के पीछे बेचैनी से खड़ा हो गया। उसे दिशा निर्देश की प्रतीक्षा थी, लेकिन दरबान उसकी ओर ध्यान न देकर खिड़की से बाहर गरजती हुई बारिश को निरंतर घूर रहा था, जोकि किसी घाव से ख़ून की तरह बरस रही थी, उबड़-खाबड़ सड़क पर विशाल गड्ढे बना रही थी, और अरबों बर्फीली बूँदों से झकझोरी जा रही थी।

"आपके सहकर्मी पहले से ही अंदर हैं," दरबान ने हाँफते हुए कहा। "वह आपको बताएँगे कि आपको कहाँ जाना है।"

नए लड़के ने उत्साह से सिर हिलाया और गेट से बाहर निकलने लगा, लेकिन दरवाज़े का हैंडल पकड़ने से पहले ही दूसरे आदमी ने उसकी ओर देखा और उसे रोक दिया। "तुम इतनी जल्दी क्यों कर रहे हो?" उसने चिढ़कर कहा। "तुम्हें तो यह भी नहीं पता कि तुम कहाँ जा रहे हो!"

"सच... वाकई...मुझे नहीं पता" वो लड़का अजीब ढंग से बड़बड़ाया।

"तो बस, तुम वहाँ जाओ,"दरबान ने कहा। उसने डेस्क के दराज में हाथ डाला और एक धब्बेदार नोटबुक निकाली, उसे सम्मानपूर्वक सही पन्ने पर खोला, फिर काग़ज़ को छूने से पहले अपनी बॉलपॉइंट पेन की नोक को अपनी उंगली परआज़माते हुए उससे पूछा

"आपका नाम"?

"बोगदानोविच।", नए लड़के ने जवाब दिया।

उसके पैर जल रहे थे, उसे ठंड लग रही थी, उसके जूते भीग गए थे, लेकिन वह जानता था कि अगर उसे वो नौकरी करनी है तो उसे ख़ुद को ख़ुशमिजाज़, निर्णायक और इच्छुक दिखाना होगा।

"क्या...? बोगदानोविच।"

दरबान ने उस नए लड़के को ऐसे देखा जैसे वह कोई दुर्लभ जानवर हो। पहले दो अक्षर लिखते हुए गुनगुनाया, दाँत चटकाए और शरमा गया, फिर सिर एक ओर झुका लिया, और बिना आवाज़ किए अपने मुँह से अक्षरों को आकार देने लगा। लड़का उसकी मेज़ के नज़दीक आया और दरबान पे झुकते हुए नोटबुक में झाँका, जहाँ साफ-सुथरी, नीचे की ओर ढलती पंक्ति में लिखा था: बोगदा नोविच, दूसरे आदमी की खोजती निगाह देख दरबान अजीब तरह से खाँसने लगा और बोला "ख़ैर, क्या आप वो इमारत देख पा रहे हैं?"

लड़के ने झुककर खिड़की से बाहर देखा।

"जी, देख पा रहा हूँ।" लड़के ने जवाब दिया।

"तुम्हे वहाँ जाना होगा वही तुम्हारा जोड़ीदार है।" दरबान ने लड़के से कहा।

जेल की कोठरी जैसी दिखने वाली उस कंक्रीट की कोठरी से वह लड़का बाहर निकला ओर अपनी जैकेट को सर तक ओढ़ लिया।

वह जैसे ही दरवाज़ा बंद करने लगा, एक तेज़ हवा के झोके के चलते उसके हाथ से दरवाज़ा छूट गया और तड़ाक की आवाज़ के साथ दीवार से जा टकराया।

"क्षमा कीजिए, लेकिन..." बोगदानोविच समझाने ही वाला था कि बूथ के सामने दरबान आ गया और उसने ज़ोर से उसका हाथ पकड़ लिया।

"यहाँ से निकल जाओ तत्काल, मूर्ख!" दरबान चिल्लाया। "क्या तुम एक दरवाज़ा भी बंद नहीं कर सकते?!"

"क्षमा कीजिए,"लड़के ने कहा, "न जाने कैसे ये मेरे हाथ से फिसल गया।"

तब उस लड़के ने सड़क पार करी और उस इमारत में घुस गया, लैम्पोस्ट से खंभे तक लड़खड़ाता हुआ चला। उसका जोड़ीदार एक घरघराते तेल वाले स्टोव के नज़दीक रखी लोहे की एक जर्जर कुर्सी पर बैठा हुआ था। उसका मुँह खुला था, गहरी नींद में खड़खड़ाते दरवाज़े से बेख़बर सर झुकाये बैठा था। बोगदानोविच उसके सामने रुका और उसने धीरे से उस प्राणी के कंधे को हिलाया।

"शुभ संध्या," मद्धम आवाज़ में उसका अभिवादन किया तो वह आदमी घबराहट में ऊपर देखने लगा। "मैं रात्रि का नया पहरेदार हूँ।"

सहकर्मी एक पल के लिए उसे घूरता रहा, फिर अपना ऊपरी होंठ पीछे खींचकर दाँतहीन मसूड़े दिखाते हुए मुस्कुराया। "ओह, तो आप है जनाब? मुझे लगा कोई निरीक्षण हो रहा है।"

बस्तियाँ दिखाने वाली तस्वीरें लकड़ी के पीले फ्रेमों में दीवार पर टंगी थीं, जिनमें से कुछ आगे की ओर सरक रही थीं, धुएँ जैसे रंग की गंदगी चमक रही थी, तेलिया फर्श पर यहाँ-वहाँ ब्रेड के टुकड़े और भोजन के अवशेष बिखरे हुए थे, और छत पर दो नियॉन लाइटें एकरस गुनगुना रही थीं।

"तो तुम नए हो," बुज़ुर्ग ने लगभग डरावने अंदाज़ में उठते हुए कहा। उसका गंजा चाँद जैसा सिर ऊँचा और ऊँचा उठता गया और आखिरकार जब वह रुका तो लड़का अपने आप पीछे हट गया, हालाँकि वह लड़का ख़ुद इतना छोटा भी नहीं था।

बुज़ुर्ग सहकर्मी विशाल शरीर वाला एक भीमकाय प्राणी था।

"केरेकेश" भीमकाय प्राणी ने फावड़े जैसे अपने दाहिने हाथ को बढ़ाते हुए अपना परिचय दिया।

"बोगदानोविच," लड़के ने अपनी दबी हुई आवाज़ में कहा। वह उस चेहरे को, जो उसके ऊपर मंडरा रहा था, ध्यानपूर्वक और लगातार घूरता रहा, जैसे सोच रहा हो कि उसने इसे पहले कहाँ देखा था।

"मैं गिर गया था," भीमकाय प्राणी ने झिझकते हुए समझाया, अपनी टूटी हुई नाक की ओर इशारा किया, जहाँ ख़ून सूख चुका था। "मुझे कुछ याद नहीं, मैंने बस अपनी आँखें खोलीं और ख़ुद को सिलाई मशीन के नीचे पड़ा हुआ देखा।"

उसका भारी शरीर फिर से कुर्सी में धँस गया, उसने मुँह के कोने में एक सिगरेट रखी और उसे जला लिया।

"क्या तुमने ज़ख़्म पर मलहम लगाई?" लड़के ने भीमकाय प्राणी से पूछा। उसने लापरवाही से हाथ हिलाते हुए कहा, "मैंने एक बूँद भी नहीं पी, कोई भी नहीं कह सकता, तुम मुझ पर भरोसा कर सकते हो..."।

बोगदानोविच अभी भी उसके सामने खड़ा था, जैसे वह किसी अदालत या परीक्षा बोर्ड के सामने खड़ा हो, हाथ पीठ पर बाँधे, थोड़ा आगे झुका हुआ।

"मलहम से आराम मिला ना?" लड़के ने यह सवाल उस समय पूछा जब वह गहरे पहिये के निशान वाली गाड़ी की पगडंडी पर यार्ड की ओर बढ़ रहे भीमकाय प्राणी से बस दो क़दम दूर थ। उसने उसकी बात को अनसुना करते हुए उससे कहा: "तुम्हें बस इतना जानना है कि किस तरफ कितने मीटर! मैं तुम्हें सब कुछ बताऊँगा, बस सुनो, क्योंकि मैं दोबारा नहीं कहूँगा।"

मूसलाधार बारिश हो रही थी, और वे सड़क के दोनों ओर बने अस्तबलों के पास से गुज़र रहे थे, जिनकी दरारों से निकलती गर्म जानवरों की भाप से एक धुंध की परत बन गयी थी। शांत होने के बजाय तूफ़ान और भी उग्र हो गया था। हवा दहाड़ रही थी और बारिश उनके चेहरों पर प्रहार कर रही थी।

"हम आमतौर पर रात में दो बार बाहर जाते हैं, फिर अस्तबल में जाते हैं, उन्हें नीचे उतारते हैं, और सुबह तक सोने देते हैं। हम एक बार फिर से बाहर जाते हैं... लेकिन अगर उनकी ज़रूरत हो तो रात में तीन बार भी जाना पड़ता है। समझे?" लड़के ने विनम्रता से सिर हिलाया। "वे यह उम्मीद नहीं कर सकते कि हम हर समय बाहर ही रहेंगे, है ना?, क्योंकि हमारे सोने का कोई तय वक़्त नहीं।"

बोगदानोविच ने सिर हिलाया और उसकी परछाईं की तरह उसका पीछा किया। अंतिम खलिहान के दरवाज़े से एक गर्भवती गाय उन्हें घूर रही थी। केरेकेश ने लड़के की ओर मुड़कर कहा। "और सुनो! अगर वे ऐसे ही खुलकर भाग जाएँ, तो तुम्हें उन्हें बाँधना होगा। समझे?"

"जी, समझ गया।" लड़के ने जवाब दिया।

वह सावधानी से उस आवारा जानवर के पास गया, उसकी गर्दन पर हाथ फेरा, फिर उसे धकेलते हुए और गालियाँ देते हुए एक खाली पत्थर के बाड़े में बाकी जानवरों के साथ बाँध दिया।

"जब वे तैयार हो जाएँ, तो तुम्हें उन्हें पीटना होगा," उसने अपने पीछे खड़े लड़के से कहा।

"उन्हें पीटना होगा?" बोगदानोविच ने हैरानी से पूछा।

"ज़रूर, क्योंकि अगर तुम ऐसा नहीं करोगे, तो उन्हें कभी पता नहीं चलेगा कि हंगेरियन देवता कौन है।"

वह लोहे की कुदाल लेने के लिए पीछे हटा।

"हम इन्हें इसी तरह प्रशिक्षित करते हैं, ताकि ये भाग न सकें। लेकिन यह बात तुम किसी को मत बताना। समझे?" कह कर उसने उसने वार किया।

अपनी पूरी ताकत से उसके सिर पर वार किया, और अधिक से अधिक निर्दयता से, बेचारा जानवर बचने की व्यर्थ कोशिश करता लेकिन रस्सा उसे छूटने नहीं देता। निरही जानवर वहीं खड़ा रहा, हर वार से लड़खड़ाता हुआ, सिर पीछे मोड़े हुए और सहन करता हुआ, वार रुकने का इन्तिज़ार करता रहा। भीमकाय प्राणी के चेहरे पर न तो कोई उत्साह था, न ही नफ़रत या ग़ुस्सा : वह शांतचित्त होकर, एक-एक करके वार करता गया, और फिर से वार करने के लिए उठ खड़ा हुआ। बोगदानोविच काँपती हथेलियों से एक पानी की नली को ऐसे पकड़े रहा, जैसे उसे किसी सहारे की ज़रूरत हो।

"ओह," लड़का धीमे से बुदबुदाया, फिर डरते-डरते उसने विशालकाय प्राणी से पूछा, "यह मर तो नहीं जायेगा? सहकर्मी ने क्रोधित होकर उत्तर दिया, "ये मरेगा?!"

पश्चिमी हवाओं का आदी यह इलाका इस उथल-पुथल से निपटने में कठिनाई महसूस कर रहा था। तूफ़ान उनके सिरों से पचास मीटर ऊपर गरज रहा था, निर्दयी और बेरहम, बार-बार एक बुरी तरह टूटी हुई जवान घोड़ी की तरह उभरता हुआ।

बोगदानोविच ने भीगे गले के साथ उत्साही विजयी भीड़ की ओर देखा, उसकी निगाहें शरण की तलाश में थीं, भीतर एक शोकपूर्ण, मौलिक स्थिरता गूँज रही थी, मानो उसे डर हो कि वह अचानक उस पर उतर आएगी, सब कुछ धूल में पीस देगी और उन्हें किसी लैम्पोस्ट के खम्बे से टकरा देगी।एक जल्लाद की तरह, हवा बबूल और पीपल के पेड़ों की कांपती, नव-पल्लवित टहनियों के साथ नाच रही थी, जो उद्देश्यपूर्ण दृढ़ संकल्प के साथ उसकी ओर झुकी हुई थीं, उन्हें वश में किया जा रहा था, फिर भी साथ ही साथ एक गुप्त उत्साह के साथ, जैसे कोई किसी को मूर्खतापूर्ण काम करने के लिए धोखा दे ताकि वे बड़ा नुक़्सान न कर सकें। जब वे वापिस आरामगाह में लौटे, एक दोस्ताना गर्माहट ने उनका स्वागत किया : चूल्हा सुकून से गुनगुना रहा था और खिड़कियों के फ्रेम में काँच खड़खड़ा रहा था।

"उसने कहा, भोजन कर लें?" केरेकेश अपनी सीट पर धड़ाम से बैठ गया, अपनी गोद में हल्के भूरे रंग का स्कूल बैग खींचा और उसकी ज़िप खोल दी। नया लड़का, ठंडा और थका हुआ, स्टोव के दूसरी ओर बैठकर ख़ुद को गर्म करने लगा और उसने भी अपनी रोटी और चर्बी निकाल ली। अभी वह अपने दूसरा निवाला खा ही रहा था कि ग़लती से उसकी निगाह उस भीमकाय प्राणी की ओर उठ गयी। उसकी गोद में दो किलो का एक ब्रेड का लोफ़ पड़ा था, जिसे हाथ से आधा फाड़ दिया गया था, और बेकन का एक छोटा टुकड़ा।

"क्या हुआ,बालक?" भीमकाय प्राणी ने उस लड़के से पूछा जोकि उसे घूर रहा था।

"ओह, कुछ नहीं... मुझे लगता है मुझे थोड़ा ज़ुकाम हो गया है..." लड़के ने जवाब दिया। वे गुनगुनाती नियॉन लाइटों के नीचे चुपचाप खा रहे थे। –"पहले क्या हुआ था तुम्हें?" भीमकाय के ख़ामोशी तोड़ी।

"कुछ नहीं, मैं ...बस यूँ ही।," बोगदानोविच ने झिझकते हुए कहा।

"उह-हह," केरेकेश बड़बड़ाते हुए बोला। "तो तुम्हें क्या लगता था कि मैं पहले क्या था?"

नए लड़के ने बेबसी से अपने साथी की टूटी हुई नाक को देखा।

"खैर... मुझे नहीं पता..." बूढ़े आदमी ने ताला फिर से अपनी जगह पर लगा दिया और बैग को अपने बगल में फ़र्श पर रख दिया।

"शर्त लगाओ कि तुम इसे नहीं ढूंढ पाओगे," उसने शरारती नज़रों से कहा। "मुझे भी ऐसा ही लगता है..."

"पुलिसवाला!" उसने बात काटते हुए कहा, "लगता हूँ न पोलिसवाला?"

लड़के ने जोर-जोर से सिर हिलाया, बिना रुके चबाते हुए कहा "बिल्कुल, क्यों नहीं?"

केरेकेश ने अपनी पीठ दीवार से टिकाई, खिंचाव किया और जोर से हाँफ़ हुए बोला, "ठीक है, तो चलो थोड़ी देर के लिए सो लेते हैं। हमें सोना ही होगा, वरना हम दिन भर टिक नहीं पाएँगे।" कुछ ही पलों बाद वह गहरी नींद में था। मार्च का महीना था, वसंत विषुव से बस कुछ ही दिन बाद।

बोगदानोविच, उसे जगाने से बचते हुए, चुपचाप एक मेज़ पर बैठ गया और उसने अपनी मेज़ पर एक किताब रख दी। जब उसे यक़ीन हो गया कि उसका साथी गहरी नींद में है, तो वह सावधानी से झाँककर उसे ग़ौर से देखने लगा। उसने केरेकेश के दो विशाल हाथ देखे, जो कीचड़ और गंदगी से चिपचिपे थे, वे दोनों मुट्ठियाँ उसकी गोद में रखी थीं, जो दो अज्ञात जंगली जानवरों के पंजों की याद दिला रही थीं, लंबी, मोटी, मांसल उंगलियाँ क्रूर कोमलता से एक-दूसरे में गुंथी हुई थीं, और अचानक उसके भीतर का तनाव पहले की ठंड की तरह कम हो गया, और उसकी जगह मिचली की भावना ने ले ली।

फिर धीरे-धीरे, जैसे जैसे धुंध छिटक रही हो, उसे एहसास हुआ कि वह डर रहा था। मुझे इस आदमी से डरना ही चाहिए, गो हक़ीक़त में वो उससे नहीं डर रहा था क्योंकि वह वास्तव में डर महसूस नहीं कर रहा था। उसके भीतर एक जबरदस्त आतंक घर कर रहा था जो किसी ज़िद्दी, अविश्वसनीय, अकथनीय आत्मविश्वास से फूट रहा था और तब यह डर सिर्फ उससे नहीं, बल्कि दुनिया में मौजूद हर शय में फैल गया था। भीमकाय प्राणी अचानक फूँक मारकर हँसा, उसने अपनी बाईं आँख थोड़ी सी खोली और घबराहट में चारों ओर देखा, फिर अपनी निगाह बोगदानोविच पर टिका दी, जो मेज़ पर रखी किताब पर झुका हुआ था, उसकी आँखें अक्षर "z" पर अडिग टिकी हुई थीं।

"क्या बात है, क्या तुम सो नहीं पा रहे?" लड़के ने भीमकाय प्राणी से पूछा।

"कैसे न कैसे, नींद मुझसे दूर भाग जाती है।"भीमकाय प्राणी ने खोजी नज़रों से उसे देखा।

"तो तुम क्या पढ़ रहे हो?" भीमकाय प्राणी ने लड़के से पूछा।

लड़के ने कवर पीछे मोड़ा और इशारा किया।

"एक उपन्यास।"

"मैं ऐसी चीज़ को हाथ भी नहीं लगाऊँगा," भीमकाय प्राणी ने कहा। लड़के ने अपनी कुर्सी पर पीछे झुकते हुए कहा "जी"।

"उसका क्या फायदा?" उसके साथी ने तीखेपन से कहा। "यह एक अच्छी आ ...नहीं?"

"समझ गया।" लड़के ने जवाब दे कर पन्ना समेटा और फिर से पहले वाक्य से पढ़ना शुरू किया।

जब वे दूसरी बार अस्तबल की ओर गए, तो सुबह के दो बज चुके थे। बारिश थम गई थी और हवा भी शांत हो गई थी।

"तुम इस तरफ से जाओ और मैं दूसरी तरफ से आता हूँ। भीमकाय प्राणी ने लड़के से कहा, "अब तुम्हें पता है कि तुम्हें क्या करना है, पता है ना?"

वह कुछ मिनटों तक अस्तबल के दरवाज़े पर खड़ा रहा, गोबर और गायों की गंध को सूंघता रहा, फिर जानवरों की सफाई करने के लिए अंदर गया।एक एक करके अस्तबलों का काम करने के बाद उसका पसीना टपकने लगा था लेकिन अंदर, झाड़ीदार सिर वाली

सुस्त गायों के बीच उसे इतना सकूँ मिला कि वह अपनी थकान और अधूरी नींद को भूल गया। उसने ख़ूबसूरती से सो रहे हरेक जानवर को लंबे समय तक निहारा। उनसे निकलने वाली कोमलता और शांति की रोशनी में अब उसे कुछ भी मुश्किल नहीं लग रहा था। वह शायद आखिरी अस्तबल के बीच में चल रहा था, जब अचानक दूर से एक मानव आवाज़ उसके कानों तक पहुँची। उसे जानने से ज़्यादा महसूस हुआ कि वह अजीब, कर्कश, ग़ुस्से भरी चिल्लाहट दूसरी ओर से आ रही थी। कुछ तो गड़बड़ है, उसके दिमाग़ में कौंधा, और वह बाहर भागा।

जैसे ही वह अस्तबलों की दो कतारों के बीच वाले रास्ते पर पहुँचा, उसने लगभग पचास मीटर कि दूरी पर बिजली की रोशनी की किरणों में केरेकेश को देखा, जो बेचैनी से अपनी बाँहें हिलाते हुए किसी पर चिल्ला रहा था। लड़के ने एक गहरी साँस ली और उनके बीच की दूरी पार कर चिल्लाने की कोशिश की,

"क्या उनमें से कोई एक भाग गया है?" लेकिन उसकी कमजोर, दबी हुई आवाज़ हवा में उड़ गई, ठीक वैसे ही जैसे उसके साथी की बातें, इसलिए उसे केवल कुछ अस्पष्ट अंश ही सुनाई दिए: "... काल ... इसे ले जाओ! ...काल ...इसे ले जाओ!"

बोगदानोविच उसकी ओर दौड़ पड़ा, उस भीमकाय प्राणी की ओर जो अँधेरे में एक अजीब छाया जैसा दिख रहा था, लेकिन उसके पैर जवाब दे गए और वह हिल ही नहीं सका।

"क्या हुआ?" उसने फिर से पूछा। केरेकेश ने शायद कुछ सुन लिया था, क्योंकि वह अचानक मुड़ा और उस पर स्पष्ट आवाज़ में चिल्लाकर बोला:

"लाइट! अरे, ये लोग क्या समझते हैं, क्या कर रहे हैं? इसे तुरंत बुझा दो!" फिर वह घूम गया और, एक कठपुतली की तरह, अपनी बाँहें लहराते हुए चिल्लाता रहा : "इसे तुरंत बंद करो! तुरंत लाइट बंद करो! तुरंत लाइट बंद करो!"

लड़के का ख़ून ठंडा पड़ गया: किस तरह की लाइट? भगवान के लिए, यह किस तरह की लाइट है? उसने अपनी आँखों पर ज़ोर डाला, लेकिन कुछ भी नहीं देख पाया। वहाँ कुछ भी नहीं था! बस कुछ भी नहीं! भीमकाय प्राणी बस अपनी बाँहें लहराकर ग़ुस्से से गरजा था : "इसे तुरंत बुझा दो! तुरंत!" और उसने घोर अँधेरी रात की ओर इशारा किया। सब कुछ सुनसान, खतरनाक रूप से शांत, अँधेरा और गहरा गया था। जब वे अपनी बाँहों में सामान दबाए हुए भारी क़दमों से दरबान के केबिन की ओर बढ़ रहे थे, तो लड़का अपने साथी के बगल में चलने की हिम्मत नहीं कर पाया, बल्कि वह ठोकरें खाते, जोर-जोर से हाँफते उस भीमकाय के पाँच क़दम पीछे-पीछे चल रहा था।

"तो क्या काम खत्म हो गया, क्या यह खत्म हो गया?" दरबान ने प्रसन्नता से पूछा जब उन्होंने अपने पीछे केबिन का दरवाज़ा बंद किया। वे सभी मेज़ के चारों ओर बैठ गए।

"हाँ खत्म हो गया, क्योंकि यह खत्म हो गया!" केरेकेश ने रूखे स्वर में कहा।अंदर दम घुटने वाली गर्मी थी, बत्तियाँ बुझी हुई थीं, और रोशनी केवल बाहर लगे लैम्पपोस्ट से आ रही थी। खिड़की के नीचे एक जर्जर, पुराना रेडियो धीमी आवाज़ में बज रहा था।

"अब मुझे वह नोटबुक दे दो!" भीमकाय प्राणी ने ग़ुस्से में दरबान से कहा, फिर लड़के की ओर मुड़कर बोला, "लिखो! किसका इन्तिज़ार कर रहे हो?"

बोगदानोविच ने ख़ुशी-ख़ुशी नोटबुक अपनी ओर खींची और उसके हाथ में थमाए गए बॉलपॉइंट पेन के लिए विनम्रता से धन्यवाद देते हुए पूछा "और मुझे क्या लिखना चाहिए?" दरबान उसके पीछे खड़ा था।

"वहाँ क्या है," भीमकाय प्राणी ने पीछे मुड़कर अपनी उंगली से प्रवेश द्वारों की ओर इशारा करते हुए समझाया। "वही बात लिखो," केरेकेश फिर बड़बड़ाया।

और बोगदानोवितसेह ने वही लिखा जो उसने पिछले पन्नों पर देखा था: रात में यार्ड में कुछ भी नहीं हुआ।

"इस पर दस्तखत करो," दरबान ने कहा। बोगदानोविच ने सिर हिलाया, फिर नोटबुक अपने साथी की ओर सरका दी।

केरेकेश चिढ़कर बोला "मेरा भी लिख दो, तुम्हारा हाथ तो नहीं टूटेगा!"

"ख़ुशी से," बोगदानोविच ने कहा।

"तो तुम लिखना कब सीखोगे, महाशय?" दरबान ने मुस्कुराते हुए केरेकेश से पूछा।

केरेकेश ने थके-हारे अंदाज़ में हाथ हिलाया। "किसलिए सीखना है? अब तक तो सब ठीक ही चल रहा है, अब झंझट क्यों?" उसने जवाब दिया।

वे अँधेरी कंक्रीट की कोठरी में बैठे थे, उनके चेहरे बाहर के लैंपपोस्टों से आती रोशनी से मुड़े हुए थे, और वे धीरे-धीरे थमते हुए बारिश की आवाज़ सुन रहे थे।

"तुम यहाँ के नहीं हो, है ना?" दरबान ने चुप्पी तोड़ी।

"नहीं," बोगदानोविच ने जवाब दिया।

"मैं तुरंत समझ गया था," दूसरे ने सिर हिलाकर कहा। "तो तुम सर्बियाई हो, या?"

"नहीं... मैं हंगेरियन हूँ।" बोगदानोविच ने हकलाते हुए कहा।

दरबान झेंपते हुए खिड़की से बाहर झांकते हुए बड़बड़ाया, "बस इसका नाम ही इतना अजीब है।"

लड़के का चेहरा फिर से पहले की तरह फीका पड़ गया, और अचानक केरेकेश के चेहरे पर भी कुछ बदल गया। दोनों चेहरे पत्थर की तरह जमकर डूब गए। और सिर्फ वे दोनों ही नहीं, बल्कि बस्ती भी डूबती हुई सी लगी।

"अब थम रहा है," पत्थर-सा चेहरा लिए दरबान ने कहा।

"हाँ, अब थम रहा है।" पत्थर बने भीमकाय ने कहा।

और वो लड़का, पैतर बोगदानोविच, भोर होने को आए आकाश के नीचे अपने आवास की ओर जल्दी-जल्दी जाते हुए, व्यर्थ ही अपने सहकर्मी के चेहरे की बनावट से ख़ुद को मुक्त करने की कोशिश कर रहा था। उसकी निगाहें व्यर्थ ही किसी चीज़ से चिपकने की कोशिश कर रही थीं, व्यर्थ ही वह अपना सिर मोड़ने की कोशिश करता रहा, उस भीमकाय प्राणी का चेहरा सब कुछ भर रहा था, हर पेड़, हर झाड़ी, हर चट्टान से, यह चेहरा उसकी आँखों में जल रहा था, यह चेहरा पूरी दुनिया में व्याप्त था, धरती पर असहनीय गर्मी की तरह– आरंभ से ही। ●

सिकन्दर और कौआ

विजयदान देथा 'बिज्जी'

(बिज्जी नाम से विख्यात विजयदान देथा ने सबकुछ अपनी मातृभाषा राजस्थानी में लिखा जिसका अनुवाद और फिल्मांकन अनेक भाषाओं में हुआ। अनेक लोककथाओं में हुआ जिससे लोकसाहित्य की अद्‌भुत क्षमता का लोहा दुनिया ने माना। 'बातां री फुलवारी' नाम से उनकी कथाओं के 14 संकलन हैं। उनका नाम साहित्य के नोबल के लिए भी प्रस्तावित हुआ था लेकिन वह उनके साहित्यिक योगदान का प्रमाण नहीं है जैसे कि प्रेमचंद और गाँधी को नोबल न मिलना उनके योगदान के मूल्यांकन का प्रमाण नहीं हो सकता।)

सिकन्दर महान्! सिकन्दर महान् भी जब आम आदमी की तरह बुखार से उत्पीड़ित हो जाए, तब यह कैसी महानता है? उस फुफकारते प्रश्न पर आगे सोचने की हिम्मत नहीं हुई तो उसने लेटे-लेटे ही अष्ट धातु का टकोरा बजाया। उसी क्षण एक यूनानी सैनिक हाजिर। कवच और शिरस्त्राण से लैस। दाहिने हाथ में दुधारी तलवार। बायें हाथ में लम्बा भाला। तीन बार कोरनिश करके आदेश की प्रतीक्षा में खड़ा हो गया। सिकन्दर ने आँखें तरेरकर कुछ कहना चाहा, मगर खाँसी के कारण व्यवधान उपस्थित हो गया। भरपूर कद-काठी का बलिष्ठ सैनिक कठपुतली की नाईं आ बढ़ा। अब के साथ झुककर चाँदी की पीकदानी उठाई और पलंग के पास खड़ा हो गया। तीन-चार बार खाँसकर सम्राट ने पीकदानी में बलगम थूका और अशक्त की भाँति वापस लेट गया। सिकन्दर के कण्ठ में भी आम सैनिक - सा चिपचिपा और गन्दा बलगम! सैनिक ने होठों पर चिपका बलगम पोंछा। चाँदी की झारी से कुल्ला कराया। छत की ओर शिथिल आँखों से देखते हुए सिकन्दर ने हुक्म सुनाया, "आज तीन दिन हो गये, एक भी यूनानी दवा कारगर साबित नहीं हुई। हकीमों के सिर तो बाद में कलम किए जाएँगे, उसके पहले पंजाब का कोना-कोना छानकर किसी अनुभवी वैद्य को लाओ। बुखार घटना तो दूर, सरदर्द और बेचैनी ज्यादा बढ़ गई। नींद भी पूरी नहीं आती। काढ़े से रही-सही भी कम हो गई। फुर्ती करो। शाम के पहले वैद्य नहीं आया तो सबको कत्ल करवा दूँगा। मैं तो बुखार के मारे लेटा रहूँ और तुम सब स्वस्थ-दुरुस्त घूमते रहो! शर्म नहीं आती? तुम सब-के-सब बेहया हो, बेहया! जब तक मेरा बुखार न उतरे, किसी भी सैनिक ने खाना खाया तो उसकी खैर नहीं है। जाओ! इस तरह खड़े-खड़े मेरा मुँह क्या ताक रहे हो?"

कोई आध घड़ी या पौन घड़ी के पश्चात् सैनिक वापस आया तो सिकन्दर नेपलकें उघाड़कर पूछा, "कह दिया सबको?"

"जरूरत ही नहीं पड़ी, गरीबपरवर!" सैनिक ने आधा झुककर जवाब दिया, "हिन्दुस्तान के बहुत बड़े वैद्य अपनी इच्छा से स्वयं ही चले आए।"

सिकन्दर ने मुस्कराने की चेष्टा की, पर मुस्करा नहीं सका। विस्मय प्रकट करते कहा, "बड़ा अजीब मुल्क है! कई देश जीते पर ऐसा मुल्क नहीं देखा!" अचानक बुखार का ध्यान आते ही पूछा, "पर वे हैं कहाँ? साथ लेकर क्यों नहीं आये?"

"बाहर खड़े हैं, हुजूर! आपका आदेश हो तो अभी ले आता हूँ।"

"बकवास बन्द करो!" उसने गुस्से से कहा, "इसमें भी आदेश की जरूरत है? वक्त पर काम लेने के लिए ही अक्ल की नियामत मिली है! समझे? जाओ जल्दी लेकर जाओ।" वह इतने जोर से बोला कि बाहर खड़ा वैद्य बिन बुलाए ही भीतर चला आया। मुस्कराते बोला, "बुलाने की जरूरत नहीं। मैंने अक्ल से काम लिया और स्वयं चला आया!"

सिकन्दर ने चौंककर देखा– साफ-शफ्फाफ सफेद दाढ़ी। सफेद ही जटा। प्रशस्त ललाट। चमकती हुई बत्तीसी। तीखी नासिका। स्नेह और माधुर्य से आप्लावित आँखें! जैसे कोई देवदूत प्रकट हुआ हो! क्षणभर के लिए सम्राट अपनी बीमारी भूल गया। कमरे में पर्याप्त रोशनी थी। उधर वैद्य भी बिस्तर पर लेटे बीमार की सूरत और आँखें ध्यानपूर्वक निहारता रहा– यूनानी देवता के उनमान प्रदीप्त चेहरा। आसन्न बीमारी से किंचित् क्लान्त! दर्प के उन्मत्त नयन। घनी-स्याह भौंहें। पतले और गुलाबी अधर। सशक्त लम्बी भुजाएँ। साँचे में ढली-सी कद्दावर देह।

सिकन्दर की आँखों में क्षणभर के लिए गुरुवर अरस्तू की स्नेह-सिक्त निगाहें कौंध गईं। किन्तु अगले ही क्षण खाँसने की भनक कानों में चुभते ही उसने नब्ज दिखाने की खातिर हाथ आगे किया। बूढ़े वैद्य ने गरदन हिलाते कहा, "ना, नब्ज की बजाय सूरत और आँखों से पहले ही निदान हो गया। मियादी बुखार है– अन्तर्ज्वर। सत्ताईस दिन से पहले नहीं उतरेगा।" फिर कुछ रुककर कहने लगा, "अब तक जो खाया-पीया, उसकी चर्चा करने में कोई सार नहीं। पर आज से गरिष्ठ भोजन व मांस-मदिरा सब बन्द। बुखार उतरने के बाद भी पूरे एक पखवाड़े तक जैसा कहूँ, परहेज रखना पड़ेगा। वरना बीमारी उथल जाने का पूरा खतरा है!"

विश्वविजेता भीतर-ही-भीतर काँप उठा। युद्ध में हजारों की नृशंस हत्या करने वाले को स्वयं अपनी मौत का बेहद डर लगा! तनिक हकलाते पूछा, "खतरा?

किस बात का खतरा? मामूली बुखार से कैसा खतरा? तुम्हारा मतलब क्या है...? साफ-साफ बताओ!"

"यह बुखार मामूली नहीं है। तीन दिन जो बदपरहेजी की, उसका भी बुरा असर हुआ है। अब पूरी सावचेती बरतेंगे, तभी उपचार में हाथ डालूँगा, अन्यथा नहीं!"

वैद्य की यह बात दोनों को ही काफी नागवार महसूस हुई। सैनिक ने तलवार की मूठ कुछ कसकर पकड़ी। सिकन्दर तैश में आकर बोला, "किसी भी सम्राट के आदेश की अवहेलना का मतलब जानते हो? फिर मैं तो सिकन्दर हूँ, सिकन्दर! मेरी शोहरत सुनी नहीं क्या?"

"खूब सुनी है! आँखों से भी देखी है।" वैद्य ने अकृत्रिम भाव

से कहा, "पंजाब का हिंसक संहार क्या भुलाया जा सकता है...?"

सम्राट कुछ गहरे सोच-विचार में उलझा-सा प्रतीत हुआ। वैद्य की परिपक्व दृष्टि ने भी उसे लक्षित किया। वह आगे कुछ कहे, उसके पहले ही सिकन्दर एक उच्छवास भरकर बोला, "फिर भी तुम मेरे इलाज की खातिर स्वयं चलकर आये, बात कुछ समझ में नहीं बैठी...!"

वृद्ध के होठों पर एक मार्मिक मुस्कान थिरक उठी। दो-एक कदम आगे बढ़कर उसकी आँखों में गहराई से झाँकते कहने लगा, "इसमें समझने लायक कुछ भेद है ही नहीं। देश के प्रति मेरी निष्ठा और रोगी के प्रति मेरा कर्तव्य, ये दो अलग-अलग मसले हैं! दोनों को साथ मिलाकर देखने से ही झमेला होता है!"

"रोगी? क्या कहा रोगी?" सिकन्दर के दिल पर एक असह्य चोट लगी। गर्वित स्वर में बोला, "मैं सिकन्दर हूँ! सिकन्दर महान्! पहला विश्वसम्राट! कुछ होश भी है तुम्हें...?"

"पूरा होश है, तभी तो बिन बुलाए चला आया! कोई दूसरा होश मुझे रखना ही नहीं है। पर मेहरबानी करके अब दीगर चर्चा बन्द कीजिए। बाकी सब औषधियाँ तो लाया ही हूँ। एकाध जड़ी-बूटी के लिए मुझे अरण्य में जाना पड़ेगा।"

किसी की आज्ञा लिए बिना ही वह बाहर चल दिया। सिकन्दर ने अदेर हिदायत दी, "सुनो, दो सैनिक हरदम इसके साथ रहने चाहिए।"

"जो हुक्म, जहाँपनाह!"

और जहाँपनाह ने स्वयं को ही सुनाते हुए धीमे से कहा, "बड़े विचित्र लोग हैं! क्या बच्चे, क्या बूढ़े और क्या औरतें– सभी तो दार्शनिक हैं। कहाँ मेरे गुरु अरस्तू तो यूनानियों के अलावा सबको ही जन्मजात गुलाम समझते हैं, जिन्हें बोली लगाकर बेचना ही उचित है। हुँ, क्योंकर उचित है? पोरस से मुकम्मल सन्धि करके, बस, यहीं बस जाने की इच्छा हो रही है!"

अपने हुनर मे पूर्णतया पारंगत होने पर भी बुजुर्ग वैद्य राजनीति की पेचीदगियों में अधिक समझता नहीं था, सो अरण्य से अपने आप ही काढ़ा बनाकर लाया। सीपी भरकर सिकन्दर की मनुहार करते बोला, "तीन-तीन घड़ी के बाद मैं खुद अपनी निगरानी में आपको यह आसव पिलाऊँगा।"

सम्राट मना करे उसके पहले ही सैनिक ने लपककर सीपी छीन ली। रुआब से बोला, "पहली खुराक आपको पीनी पड़ेगी! यही शाही कायदा है...!"

अपनी कमजोरी को छिपाने की मंशा से सिकन्दर तत्काल उठ बैठा। एक अबोध बच्चे की नाईं वृद्ध की दाढ़ी निहारते कहने लगा, "कहीं इसमें प्राण घातक जहर मिला हुआ न हो।" और दूसरे ही क्षण उसके होठों पर एक अलौकिक मुस्कान दीप्त हो उठी। "मगर आपके हाथ से तो जहर भी पीने को तैयार हूँ। माँ ओलम्पियास ठेठ बचपन में इसी तरह दवा पिलाती थी। बिल्कुल ऐसी ही सीपी में।" इतना कहकर उसने अदेर एक शिशु की नाईं अपना मुँह खोला और वृद्ध ने सीपी का आसव उसे पिला दिया। बेहद आश्चर्य कि युवा सम्राट एक ही जीवन में दुबारा वैसा ही शिशु बन गया! सहज हाव-भाव से सीपी झपटकर उसे चाटने लगा। फिर चंचल आँखें घुमाते हुए जूठी सीपी सैनिक के हाथ में थमा दी। बड़ी से बड़ी दिग्विजय के बर्बर परितोष की अपेक्षा एक सात्विक आनन्द की उदात्त अनुभूति से उसका अन्तस् छलछला उठा! लेटने की इच्छा होते हुए भी वह लेटा नहीं। कुछ देर तक बैठ रहा। फिर अपनी बाल्य जिज्ञासा प्रकट करते पूछा, "आपको मेरी बीमारी का पता क्योंकर चला? न तो आपने किसी से पूछा और न किसी ने आपको कुछ बताया!"

"जिस तरह दूर-दराज के पक्षियों को पानी का पता चलता है। भँवरों को फूलों का और मधुमक्खियों को पराग का पता चलता है?" फिर बुजुर्ग वैद्य ने तनिक मुस्कराते कहा, "जिस तरह गिद्ध-कौवों को मरणासन्न पशुओं का पता चलता है!"

प्रतिवाद की कोई गुंजाइश नजर नहीं आयी तो वह वैद्य की दाढ़ी के रुपहले बाल टुकुर-टुकुर देखता रहा।

दूसरे दिन अल्ल-सवेरे वैद्य ने दवा पिलाते समय सिकन्दर को आगाह किया, "करीब पचासी घड़ियों तक सीने में जलन, सारे शरीर में टूटन, सिर में दर्द, जी में घबराहट और बेचैनी रहेगी। किसी तरह की चिन्ता न करके, मामूली हिम्मत से काम लें। फिलहाल नदी के चमकते बालू-कणों का उबला पानी, अध-सिंकी जेठी बाजरी का दलिया व बकरी का दूध ही एकमात्र पथ्य है। तीन दिन बाद गाय के दूध में उबली हुई अंजीरों का सेवन मुफीद रहेगा। मुझे पूरी आशा है कि आप पहले से अधिक तन्दुरुस्त हो जाएँगे।"

अनुभवी वैद्य ने जैसा कहा, वैसा ही हुआ। सम्राट की हालत धीरे-धीरे बिगड़ती गयी सो पचासी घड़ियों तक बिगड़ती ही रही। विश्वविजेता का बुरा हाल! उसकी सेना में हजारों बहादुर सैनिक थे। पसीने की जगह खून बहाने वाले! पूरे वफादार! पर कोई भी उसकी बीमारी बाँट नहीं सका। उसे अकेले ही जस-तस भोगनी पड़ी! सीने के भीतर मानो आँच सुलग रही हो। हथेलियों में जलन। पाँवों में जलन। ओझरी और अंतड़ियों में कुलबुलाहट। विश्वसम्राट एक बच्चे की नाईं छटपटा रहा था। अर्द्धविमूर्च्छित अवस्था में नितान्त नयी-नयी अनुभूतियों से उसका साक्षात्कार हो रहा था। वाणी और शब्दों से सर्वथा परे! यूनान और मेसेडोनिया की शान व प्रतिष्ठा को कुछ समय के लिए वह भूल चुका था। जिसकी विजय दुन्दुभि परसिया, मिस्र, सीरिया, अफ्रीका, मध्य एशिया तक निर्बाध गूँजती रही, वह रोगशैया पर अकेला लेटा है! खामोश। पत्नी रोकसाना भी साथ नहीं दे सकी। थेबिस के निवासियों ने जब उसकी दासता स्वीकार करने से मना कर दिया तो भयंकर भूचाल की नाईं उसने सारे शहर को ही नेस्तनाबूद कर दिया। छह हजार बाशिन्दे जो कुछ समय पहले जीवित थे, हँसते-मुस्कराते थे, सपने देखते थे– उन्हें मौत के घाट उतार दिया! निःस्वप्न बना दिया! हजारों बच्चों एवं हजारों औरतों को गुलाम बनाकर बेच डाला। आज वे सभी अपनी साँसों का लेखा-जोखा उससे माँग रहे हैं! सत्तर नये शहर बसाने वाला एक छोटे-से कमरे में बेबस की नाईं पड़ा है! न हीरे-मोतियों से उसकी बीमारी कम हुई, न बेशुमार सोने-चाँदी से! रह-रहकर उसकी आँखों के सामने आलोक एवं अँधियारा बुझता और दमकता...!

लेकिन पचासी घड़ियाँ गुजरते ही मानो किसी दुःस्वप्न का अभिशाप आँख खुलते ही मिट गया हो। सिकन्दर को पहली चेतना

तो यह हुई कि वह मरते-मरते बच गया! यूनानी हकीमों के भरोसे तो कुछ उम्मीद रखना ही बेकार था। सम्राट ने वैद्य की ओर कृतज्ञता भरी आँखों से देखा और वैद्य ने वात्सल्य भाव से अपने रोगी को निहारा। मौन की वाणी क्षणभर में ही बहुत कुछ व्यक्त कर जाती है। जो थूक सनी जिह्वा से सम्भव नहीं...!

बीमारी भुगतने पर ही अजेय सम्राट को स्वस्थ जीवन की अहमियत समझ में आयी– जिस प्रकार सूरज दिन में एक बार ही उगता है, उसी प्रकार प्रत्येक मनुष्य को जीन के निमित्त फकत एक ही ज़िन्दगी मिलती है! कोई भी मनुष्य एक ही जीवन में दो बार नहीं जी सकता! मगर सिकन्दर ने कभी इस सच्चाई पर गौर नहीं किया। एक के बाद एक युद्ध की सफलताओं और नरसंहार के दौरान उसे यह सोचने का वक्त ही नहीं मिला कि वह स्वयं नश्वर है! उसके दिवंगत होने के बाद भी यह दुनिया इसी तरह मजे में आबाद रहेगी– क्षणभर के लिए भी उसे यह परम सत्य महसूस नहीं हुआ! बलवती महत्त्वाकांक्षाओं के प्रति ऐसा उदासीन तो वह कभी नहीं रहा! स्वयं किसी निश्चित निर्णय पर पहुँच सका तो उसने वयोवृद्ध वैद्य से पूछना ही उचित समझा। उस पर सम्राट का विश्वास कुछ बढ़ता जा रहा था। गर्दन खुजलाते शंका प्रकट की, "यदि संयोग से आप मेरा उपचार नहीं करते तो सच बताइए, क्या मैं मर जाता...?"

वैद्य इसी अवसर की प्रतीक्षा में था! दृढ़ निश्चयात्मक स्वर में कहा, "नहीं, अभी तुम्हारी उम्र शेष है!"

"कितनी? कितनी उम्र शेष है? बताइए कितनी?" सिकन्दर ने अत्यधिक व्यग्रता से पूछा।

"क्यों जानना चाहते हो? न जानना ही श्रेयस्कर है! राजा के लिए भी और रंक के लिए भी!"

"मेरे न रहने पर दुनिया के असंख्य बाशिन्दे जिन्दा रहें, मैं यह बर्दाश्त नहीं कर सकता...! मेरे मौजूद न रहने पर भी सूरज चाँद उगें, फूल खिलें, लोग सुहागरात मनाएँ, जच्चा के गीत गाएँ और बरसात में नहाएँ, मैं हरगिज, हरगिज नहीं चाहता! एक अदना आदमी जिन्दा रहे, हँसता-मुस्कराता रहे और सिकन्दर कूच कर जाए, ऐसा नहीं हो सकता...!"

"ऐसा ही होता है!" वैद्य ने धीमे पर दृढ़ स्वर में कहा, "आपके पिताश्री प्रयाण कर गये और दुनिया जीवित है! ऐसा ही होता है, होता रहेगा...!"

"नहीं, वे मरे नहीं, उनकी तो हत्या हुई थी।"

"मौत अपने जिम्मे कुछ नहीं लेती! उसे तो फकत बहाना भर चाहिए। समय पर जो भी बहाना मिल जाए, बस, इतना ही पर्याप्त है उसके लिए...!"

"पर मेरे लिए एक भी बहाना उसे नहीं मिलेगा...!"

"बहाने तो अपने-आप उद्घटित होते रहते हैं, वह कहीं खोजने नहीं जाती!" फिर उसने तनिक गम्भीर स्वर में कहा, "क्या तुम सचमुच अमर होना चाहते हो? मैं तो नहीं चाहता!"

सिकन्दर ने बेबाक उत्तर दिया, "आप किस प्रलोभन की खातिर अमर होना चाहेंगे, भला? मेरे पास तो अनेक प्रलोभन हैं– कई विजित साम्राज्य, हजारों गुलाम, बेशुमार दौलत, अनगिनत हीरे-मोती और बेइन्तहा सोना-चाँदी! मुझसे पहले संसार में ऐसा कोई सम्राट नहीं हुआ, जिसके पास इतना बड़ा साम्राज्य और इतनी माया हो! क्या एक दिन अचीता मर जाने के लिए मैंने इतना खूब बहाया...?"

वैद्य ने कुछ सोच-विचारकर कहा, "यदि तुम्हारी ऐसी ही प्रचण्ड कामना है तो तुम्हें अमर होने का उपाय भी बताऊँगा! मेरे सिवाय कोई नहीं जानता। वचन दो कि तुम किसी को भी नहीं बताओगे!"

सिकन्दर की खुशी का पार नहीं रहा, जैसे तारों भरा आकाश उसकी मुट्ठी में समा गया हो! उसके शरीर में और भी दस-बीस जिह्वाएँ होतीं तो सभी से एक साथ कहता, किन्तु विश्वविजेता होने पर भी उसके मुँह में मात्र एक ही जीभ थी! बोला, "नहीं, हरगिज नहीं बताऊँगा। रोकसाना को भी नहीं, जिसे में बहुत चाहता हूँ। औरतों को तो अमर होने की जरूरत ही नहीं है! उन्हें तो बीस बरस की उम्र में ही मर जाना चाहिए! बस, एक बात और कि मैं समय के साथ बूढ़ा भी नहीं होना चाहता, जैसा आज हूँ वैसा ही बना रहूँ...!"

बूढ़ा वैद्य दार्शनिक मुद्रा में कुछ देर तक सोचता रहा। फिर अकस्मात् इस तरह धीर - गम्भीर स्वर में कहने लगा, मानो सिकन्दर के कमरे की स्तब्ध हवा से वे बोल-बरस रहे हों! " कामना करता हूँ कि परमेश्वर तुम्हें सुमति प्रदान करे! क्या तुम्हें यह भी याद दिलाना पड़ेगा कि अपने जन्म की वेला तुम उतने ही असहाय निरीह और अशक्त थे, जितने कि अन्य शिशु होते हैं! समय पाकर ही तुम धीरे-धीरे बड़े हुए हो! जवान हुए हो! समय के साथ ही नश्वर प्राणियों की नाईं तुम्हें भी बुढ़ापा निर्बल, निर्वीर्य और जर्जर कर देगा! अकाल मृत्यु की बात छोड़ भी दूँ, तब भी तुम्हें समझाना चाहूँगा कि मरण के चिर वरदान की वजह से ही जीवन की महिमा है! पर तुमने यमराज की जिम्मेवारी हाथ में लेकर हजारों निर्दोष व्यक्तियों का अकाल संहार किया है! फिर भी तुम अमर होना चाहते हो? बोलो क्यों? क्यों?"

जीवन में पहली बार सिकन्दर को अपनी इच्छा के विरुद्ध प्रतिवाद के कड़वे बोल सुनने पड़े, तब भी उसने आपा नहीं खोया। इसलिए कि वह अमर होना चाहता था और जिसका उपाय सिर्फ उस बूढ़े वैद्य के पास ही था। और उसी ने सिकन्दर को जीवनदान दिया था। अपनी सफाई के पहलू से आश्वस्त नहीं होते हुए उसने ऊपरी मन से कहा, "इसलिए कि मुझसे पहले इतने बड़े साम्राज्य का सम्राट और इतनी दौलत का दावेदार समूचे विश्व में कोई नहीं हुआ! इस प्रलोभन को मैं जीत नहीं सकता! मुझे अमरत्व का वरदान चाहिए ही चाहिए...!"

इस बार धवल बत्तीसी और होठों के साथ-साथ बूढ़े वैद्य की दाढ़ी का बाल-बाल एक अलौकिक मुस्कान से दीप्त हो उठा। स्वीकृति के आशय से गरदन हिलाते कहने लगा, "अब मुझे कुछ भी नहीं कहना है। जाने क्यों मुझे आशा थी कि अरस्तू जैसे महान् गुरु के शिष्य में कुछ तो वैसी समझ होगी! खैर, तुम्हारी यही अन्तिम इच्छा है तो इसे अधूरी नहीं रखना चाहूँगा। इस बार जुदा होने के पश्चात् तुमसे मेरी मुलाकात नहीं होगी। पर मेरी मंगल कामना सदैव तुम्हारे साथ रहेगी। आश्रम में लौटते ही अपने शिष्यों को अन्तिम प्रवचन सुनाकर, अपनी स्वेच्छा से मृत्यु का वरण करूँगा!... तो अब ध्यानपूर्वक सुनो। सुमेरु पर्वत की पश्चिम दिशा में एक लम्बी गुफा

है। जिसके मुँह पर एक प्रचण्ड शिला युगों से रखी हुई है। विश्वस्त सैनिकों से हटवाकर तुम अकेले ही उसके भीतर आगे बढ़ते रहना। निःशंक और निःशस्त्र। उस अछूती जमीन पर पहली बार तुम्हारे ही पदचिह्न अंकित होंगे!"

सिकन्दर की सुगठित देह के भीतर और बाहर आलोड़ित भावों को कुछ देर परिलक्षित करने के पश्चात् वैद्य आगे कहने लगा, "काफी दूर चलने पर एक झरने का पानी एक तलैया में समाहित होते हुए तुम्हें साफ दिखलाई पड़ेगा! वह अद्भुत तलैया न कभी खाली होती है और न कभी पूरमपूर भरी होती है! वहीं पीपल के पेड़ पर एक कौआ हरदम चिल्लाता रहता है– क्राँव! क्राँव! क्राँव! इस सृष्टि में फकत वही अमर है, जो अपने अमरत्व की प्रतिक्षण उद्घोषणा करता रहता है! झरने के निःशेष होते प्रवाह से तुम सात अंजलि पानी पी लेना। फिर तुम्हारे शाश्वत जीवन को चुनौती देनेवाला कोई नहीं है–न देवता, न असुर, न मनुष्य! केवल इक्कीस विश्वस्त सैनिकों को साथ ले जाओ। उन्हें गुफा से तीन हजार कदम दूर रखना। इसी शुक्ल पक्ष की नवमी को प्रस्थान करना। तुम्हारी मनोकामना पूर्ण होगी।"

तत्पश्चात् स्वस्थ-दुरुस्त सिकन्दर के लिए कैसी ढील! सुहाने सपने की नाईं वह इक्कीस सशस्त्र सैनिकों के साथ हवा से बातें करता हुआ सुमेरु पर्वत की उस निर्देशित गुफा के पास पहुँचा। बलिष्ठ सैनिकों की बेजोड़ ताकत के बावजूद। वह भरकम शिला बड़ी मुश्किल से दूर खिसक पाई! गुफा के भीतर प्रवेश करते हुए सिकन्दर का माथा ठनका। भीतर छिपे हुए पौरस के सैनिकों ने हमला कर दिया तो वह अकेला निःशस्त्र हाथों से क्योंकर उनका सामना कर सकेगा? मौत के मर्मान्तक भय की उसे पहली बार दुर्दान्त अनुभूति हुई! कायर की भाँति वापस लौटने की प्रबल इच्छा के बावजूद उसने मौत के भय को तत्काल झटक दिया। नहीं-नहीं, भारतवर्ष का वह निश्छल देवदूत अपने दुश्मन के साथ भी विश्वासघात नहीं कर सकता! बर्फ की नाईं दमकती उस धवल दाढ़ी का बाल-बाल उसे आश्वस्त करता रहा और वह बेधड़क आगे बढ़ता रहा!... सचमुच, गहर घुमेर पीपल की डाल पर बैठा कौआ अपने अमरत्व की अविराम रट लगा रहा था– क्राँव! क्राँव! क्राँव! और पास ही कल-कल की सुमधुर ध्वनि झंकृत करता हुआ स्वच्छ झरना अविरल बह रहा था। सिकन्दर के आश्चर्य और आनन्द की सीमा नहीं रही कि इतनी दूर गुफा के भीतर यह मद्धिम-मद्धिम आलोक कहाँ से आ रहा है? उसने विस्फारित आँखों से एकटक देखा कि ठौर-ठौर बेशकीमती हीरे बिखरे पड़े हैं! जिनकी किरणों से जो अप्रतिम द्युति झिलमिला रही है, वह पूनम की चाँदनी और सूर्योदय के उजाले से सर्वथा भिन्न है! कौए के अलावा कहीं कोई प्राणी उसे नजर नहीं आया! तो क्या यह कौआ ही इस अकूत खजाने का मालिक है? क्या उसे एहसास भी है अपने इस अपरिमित वैभव का? झरने का पानी पीकर वह गुफा के तमाम नगीने हथियाने की तजबीज सोचेगा! सिकन्दर के लिए कुछ भी असम्भव नहीं...!

हठात् कौए की अविराम क्राँव-क्राँव बन्द हो गयी! सिकन्दर ने चौंककर उधर देखा। पीपल की शाख पर बैठा कौआ पूर्ण सतर्क होकर उसे ही एकटक घूर रहा है! कहीं उसके प्रच्छन्न प्रलोभन का आभास तो नहीं हो गया उसे? सहसा झरने की अविरल पुकार भी शान्त हो गयी, जैसे किसी के अदीठ खूनी पंजों ने उसे दबोच लिया हो! उस असह्य शान्ति का नीरव कोलाहल उसके कानों को बेधने लगा!... यदि यह आलोक भी इसी तरह अचानक बुझ गया तो वह न झरने के पास पहुँच सकेगा और न गुफा से बाहर निकल सकेगा! तब इस अनादि और अनन्त अन्धकार में एक ही ठौर खड़ा खड़ा वह निश्चित रूप से सूख जाएगा। सिकन्दर की आँखों के सामने निर्धूम कोहरा-सा छाने लगा तो चेतना के परे ही उसके पाँव झरने की ओर स्वतः बढ़ चले, मानो मस्तिष्क की बजाय उसके पाँवों ने यह बात सोची हो!

अमर होने की लालसा के वशीभूत उसके हाथ पानी की ओर बढ़े ही थे कि कौए की ललकार सुनकर, वे जहाँ थे, वहीं रुक गये– जरा ठहरो सिकन्दर! मेरी स्वीकृति के बिना इस झरने की एक बूँद भी चख ली तो यहीं ढेर हो जाओगे! जिस भूल के कारण मैं हजारों-हजार बरस से अमरता का यह अभिशाप भोग रहा हूँ, तू सपने में भी यह गलती मत करना! मैं इस शाश्वत ज़िन्दगी से तंग आ गया हूँ! जाने कितनी शताब्दियों से मरना चाहता हूँ, लेकिन मर नहीं सकता! निरंतर क्राँव-काँव के रुदन से मेरे कान सर्वथा संवेदन-शून्य हो चुके हैं! और जिस माया के प्रति तेरी चाह जागी, मैं ही उसका एकछत्र स्वामी हूँ! यदि तू मृत्यु के देवता यमराज के पास जाकर मेरे लिए मरने का नुस्खा ले आये तो यह समूची सम्पदा तेरे हवाले कर दूँगा! मुझे तो यह फूटी आँखों भी नहीं सुहाती! मेरी मृत्यु के बाद जितनी इच्छा हो, इस झरने का पानी पीते रहना! ना रे ना, जिस तलवार से तूने हजारों व्यक्तियों को मौत के घाट उतारा, मैं उससे मरने वाला नहीं हूँ! न अग्नि में जलकर, न पानी में डूबकर और न कैसा ही हलाहल विष खाकर मैं आत्महत्या कर सकता हूँ! भगवान भले ही मर जाए, मैं नहीं मर सकता! जीने का सुख और आनन्द तभी है, जब मरने का संयोग उसके साथ जुड़े! मृत्युविहीन अमरता से बड़ा अभिशाप और कुछ भी नहीं है! मेरा चिर- दुर्भाग्य कि मैं वही त्रासदी भुगत रहा हूँ! अरे! तू किस चिन्ता में डूब गया? तेरे हाथ से मरे हुए एक व्यक्ति या गुलाम के रूप में बेचे हुए एक बच्चे की जीवन्त साँसों की तुलना में इन अगणित हीरों का मूल्य एक कानी- कौड़ी भी नहीं है! कौए की योनि पाकर, जो बात मेरी समझ में आ गयी और एक मानुस होकर भी तेरी समझ में नहीं आयी? फिर बुद्धि का मायना क्या है? उसकी सार्थकता क्या है? क्राँव! क्राँव! क्राँव!"

अपनी ख्याति के चढ़ते दौर में, विश्वविजेता की सर्वोच्च प्रतिष्ठा के बावजूद सिकन्दर एक कौए से पराजित होकर उलटे पाँव वापस लौट पड़ा! तब उन दोनों में कौन महान् है– सिकन्दर या कौआ? कौआ या सिकन्दर? उस चिर-ज्वलन्त प्रश्न का उत्तर आज भी शेष है! शेष है...!! ●

समाज में जो ऊँच नीच की भावना से भरा हुआ है, जहाँ शक्ति को ही श्रेष्ठता का आधार माना जाता है, वहाँ मनुष्य को मनुष्य का दर्जा देना इतना आसान नहीं, वहाँ विश्वविद्यालय ही इस मनुष्यता के अभ्यास के परिसर हो सकते हैं।

अंडमान निकोबार द्वीप समूह की जीवंत यादों पर 'दस डिग्री चैनल'

समीक्षक : रमेश जोशी

डॉ. श्रीकांत उपाध्याय द्वारा लिखित 'दस डिग्री चैनल' अंडमान और निकोबार द्वीप समूह की जीवंत यादों को समेटे हुए है। यह किताब हिंदी साहित्य की एक उत्कृष्ट कृति है। लेखक रमेश जोशी इस किताब की समीक्षा कर रहे हैं।

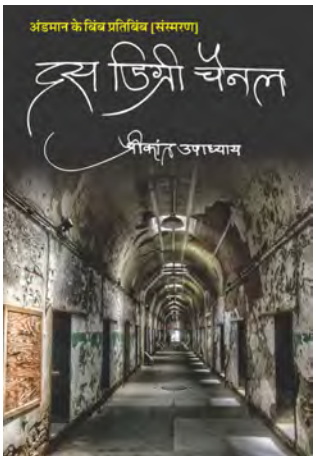

अगस्त 1979 में उस वर्ष की स्नातकोत्तर हिंदी अध्यापकों की योग्यता सूची में प्रथम स्थान पर होने के पुरस्कार स्वरूप केंद्रीय विद्यालय, (अब न. 1) पोर्ट ब्लेयर (अंडमान निकोबार द्वीपसमूह) में पदस्थापन हुआ। सबसे छोटा बेटा बहुत खुश तो पिताजी परेशान और गली मोहल्ले के लोगों ने समझा मैं बाड़मेर जा रहा हूँ जो राजस्थान का काला पानी कहा जाता है। सब इलाकों के अपने-अपने काले पानी होते हैं।

जितना सत्ता और सुविधाओं से दूरी उतना काला पानी।आज जहाँ शहरों में शव को कन्धा देने के लिए चार जन बड़ी मुश्किल से, तो कभी किराये पर जुटाने पड़ते हों वहाँ पोर्ट ब्लेयर की जेट्टी पर जैसे ही एम.वी. हर्षवर्द्धन लगा तो अगवानी के लिए प्राचार्य और विद्यालय के चार-पाँच वरिष्ठ सदस्य एक छोटे ट्रक और एक जीप के साथ उपस्थित।

संबंधों का अभाव जीवन को राजधानी में भी काला पानी बना देता है तो आदमी अपनी उत्फुल्ल संवेदनाओं से काले पानी में भी एक नया परिवार बसा लेता है। उसी वर्ष पोर्टब्लेयर के सरकारी कॉलेज में शाम को हिंदी की स्नातकोत्तर कक्षाएँ प्रारंभ हुई।

कैम्प बेल बे निकोबार द्वीपसमूह का मुख्यालय, जहां पहुँचने के लिए दस डिग्री चैनल पार करना ज़रूरी है, जो बंगाल की खाड़ी का सर्वाधिक अशांत समुद्री क्षेत्र है, जहाँ पहुंचे बिना किसी को इन द्वीपों की यात्रा का पुण्य-लाभ नहीं होता; काले पानी के 'काला पानीत्त्व' की अनुभूति नहीं होती,जहां से कोई 45-50 किलोमीटर दूर स्थित है भारत का सुदूरतम दक्षिणी छोर 'इंदिरा पॉइंट' जिसे पहले यशस्वी ब्रिटिश नेविगेटर पारसन के नाम पर 'पारसंस पिग्मिलियन पॉइंट' कहा जाता था।

लेखक कहता है– अवश्य ही महर्षि अगस्त्य इंडोनेशिया जिस मार्ग से होकर गए थे वह यहीं से होकर गुजरता है। क्या इसका नाम 'अगस्त्य बिंदु' नहीं हो सकता था? श्रीकांत उपाध्याय। हर शब्द के उच्चारण को उसको पूरा समय देते, शब्द-शब्द को अपने उतार-चढ़ाव और बलाघात से मूर्तिमंत करते हुए बोलने वाले। कम किन्तु सांगोपांग लिखने वाले। हम व्यंग्य लेखकों की तरह नहीं जो सामने वाले का वाक्य पूरा होने से पहले ही तलवार निकाल लेते हैं।

मुझे लगता था कि यह उपाध्याय की ओढ़ी अति नाटकीयता है। आज लगता है, चाहे ओढ़ी हुई ही थी लेकिन वह नाटकीयता पाठकों और श्रोताओं के लिए कुछ बेहतर दे जा रही है। उनकी द्वीपों के विरल चित्रों की संस्मरणात्मक कृति 'दस डिग्री चेनल' पढ़ते हुए यह सायास अर्जित शैली अनायास लगने लग जाती है। यही शैली लेखक को हजारी प्रसाद द्विवेदी, कुबेरनाथ राय, विद्यानिवास मिश्र के समकक्ष बैठा देती है। यह उक्ति पाठकों को अतिशयोक्ति पूर्ण लग सकती है क्योंकि उनका परिचय उन्हीं लेखकों से हो पाता है जिन्हें राजधानियों में रहकर मीडिया व संचार साधनों की कृपा प्राप्त हो जाती है अन्यथा जाने कितने अरण्य-कुसुम खिलते हैं, जाने कितने मयूर गहन कान्तारों में नर्तन करते रहते हैं।

वैसे लेखक को लिखकर अवश्य संतुष्टि मिल गई होगी लेकिन एक पाठक और साहित्यकार होने के नाते पाठकों का इस कृति से परिचय करवाना मुझे अपनी जिम्मेदारी अनुभव होती है। आज से पचास-चालीस वर्ष पहले मुख्यभूमि में बैठकर इन द्वीपों के बारे में सोचना और यहाँ आना एक बहुत बड़ा साहसिक काम माना जाता था।

लम्बी समुद्री यात्रा, आवागमन और संचार के अत्यंत सीमित साधन, कुछ भौतिक सुविधाओं का अभाव यहाँ अवश्य रहा, घर से दूरी का अहसास भी एक भिन्न प्रकार की उदासी से भरने वाली बात थी। आज की बात और हो गई है लेकिन उस समय इसी दूरी ने यहाँ एक प्रकार की अद्भुत एकता भी स्थापित कर दी जिसे आज जाति-धर्म, राजनीति में बँटा भारतीय समाज नहीं समझ सकता।

प्रायः मुख्यभूमि से यहाँ प्रतिनियुक्ति पर एक दो वर्ष के लिए आने वाले अधिकारियों ने सरलता से उपलब्ध सूचनाओं और कुछ फोटो के आधार पर यहीं पोर्ट ब्लेयर में अपने कार्यालय में बैठकर पुस्तकें लिख दीं और मुख्यभूमि में लेखक के रूप में दर्ज हो गए।कुछ एल.टी.सी., पर हवाई जहाज से एक दो दिन के लिए भ्रमण के लिए यहाँ आने वाले लेखक भी रहे हैं। उनमें से एक प्रसिद्ध कहानी लेखक और अब स्वर्गीय ने तो यहाँ की किसी ऐसी प्रजाति की युवती से अपने प्रेम की कथा लिख मारी जिससे अभी तक किसी भी शहरी समाज के व्यक्ति का संपर्क नहीं हुआ है। द्वीप तुम्हारा नाम स्वयं ही...।

हाँ, द्वीपों के बारे में मेहनत करके, प्रमाणिक जानकारियाँ जुटाकर भी कुछ पुस्तकें लिखी गई। उनका सूचनात्मक महत्त्व भी है। लेकिन मैं एक वाक्य में साधिकार यह कह सकता हूँ कि 'दस डिग्री चैनल' द्वीपों पर लिखी गई अब तक की सर्वश्रेष्ठ और प्रामाणिक 'साहित्यिक कृति' है जो अपने बिम्ब विधान, चित्रात्मक और ध्वन्यात्मक शैली से बड़े-बड़े लेखकों और साहित्य रसिकों को चमत्कृत कर सकती है।

इन द्वीपों में नेग्रितो नस्ल के चार आदिवासी–- ग्रेट अंदमानी, ओंगी, सेंटिनल और जारवा तथा मंगोल नस्ल के दो आदिवासी-निकोबारी और शोम्पेन की तरह मुख्यभूमि से आने वाले भारतीयों के भी कई स्तर और कारण रहे हैं। सबसे पहले दंडस्वरूप लाए गए वे लोग जिन्होंने ब्रिटिश शासन का सशस्त्र विरोध लिया व अन्य खूँख्वार अपराधी जिनमें से कुछ सजा पूरी होने पर मुख्यभूमि लौट गए और कुछ यहीं रह गए। ये लोकल कहलाए। यहाँ की व्यवस्था के लिए प्रतिनियुक्ति पर आने वाले सरकारी कर्मचारी अवधि पूरी होने पर वापिस चले जाते। अध्यापकों की कमी होने के कारण उनकी पत्नियों को यहाँ प्रायः अध्यापिका की नौकरी सरलता से मिल जाती।

कुछ वर्षों बाद वे स्थायी हो जातीं और फिर वे भी मुख्य भूमि तबादला करवा लेतीं। स्थानीय प्रशासन के मुख्यभूमि से आए बहुत से कर्मचारी भी रिटायर होने के बाद यहीं बस गए। फिर 1962 के युद्ध के बाद इस क्षेत्र की निगरानी के लिए ग्रेट निकोबार में भूतपूर्व सैनिक परिवार भी यहाँ बसाए गए जिन्हें सेटलर कहा जाता है। आबादी के इस वर्ग विभाजन के अतिरिक्त आज इन द्वीपों विशेषकर पोर्ट ब्लेयर का चरित्र बहुत बदल गया है।

पहले 15 दिन में एक जहाज मुख्य भूमि से आता था और सप्ताह में दो दिन हवाई जहाज कई दिनों के अखबार और चिट्ठियाँ एक साथ लेकर आता था। मुख्य भूमि से आने वाले यात्रियों की संख्या और आलू-प्याज की सूचना भी आल इण्डिया रेडियो का समाचार हुआ करता था। अब उसे भारत के किसी भी महंगे पर्यटन स्थल से भिन्न नहीं आंका जा सकता।

आज मोबाइल से कहीं भी, कभी भी बात कर लो जबकि उन दिनों किसी आपातकाल में सेना या प्रशासन का वायरलेस ही एक मात्र आसरा था जिस तक सबकी पहुँच नहीं होती थी। लेखक का 'दस डिग्री चैनल' अब कहीं सुदूर द्वीपों में ही मिल सकता है लेकिन क्या इतिहास का कोई महत्त्व नहीं होता? और फिर प्रकृति तो नहीं बदलती। अंडमान निकोबार को दो भागों और जिलों में बाँटा गया है– अंडमान और निकोबार। दोनों के अपने-अपने मुख्य-मुख्य द्वीप हैं। दस डिग्री चैनल या दस डिग्री अक्षांश मोटे तौर पर इन दोनों जिलों के बीच से गुजरती है।

इन चित्रों को राजधानी पोर्ट ब्लेयर, सेल्यूलर जेल, यहाँ के आदिवासी, जापानी राज और उसकी क्रूरताओं के संकेतात्मक और सक्षिप्त चित्रों के अतिरिक्त लेखक के शब्द चित्रों को कई खण्डों में बाँटा जा सकता है यथा लेखक का नेहरू जी के अस्थि-कलश के साथ पोर्टब्लेयर की जेट्टी पर अवतरण, पोर्ट ब्लेयर का जीवन, दस डिग्री चैनल के पार ग्रेट निकोबार की यात्रा जो कई पड़ावों से होकर पूरी होती है, ग्रेट निकोबार के जीवन और प्रकृति के अल्पज्ञात चित्रात्मक बिम्ब। और इन सब के बीच मानवीय संवेदनाएँ, मानव की लघुता और विराटता, जीवन के छोटे-छोटे दुःख-सुख और जिजीविषा अपने अनाम रंगों में चित्रित हैं।

जीवन और यात्रा के चित्रों का पूरा-पूरा आनंद एक बार में नहीं आता जैसे कि रामचरित मानस व्यक्ति एक बार परीक्षा पास करने के लिए पढ़ता है, फिर अध्यापक के रूप में पढ़ाता है और फिर रिटायमेंट के बाद फुर्सत से आनंद के लिए पढ़ता है। सब स्थितियों में अलग-अलग अर्थ खुलते हैं। मेरे विचार से जिस स्थान में हम रह चुके हैं उसके शब्द चित्र हमें अधिक आनंदित करते हैं और फिर इच्छा होती है कि एक बार फिर उस स्थान को इस नई दृष्टि से देखें।

यदि आप अंडमान निकोबार में रह चुके है तो इसे अवश्य पढ़ें। आपको लगेगा, अरे, यह भी था क्या वहाँ? ऐसा भी था क्या? काश, समुद्र यात्रा में रात को नहीं सोते और अमुक दृश्य को देखते।अजंता एलोरा की गुफाओं के चित्रों की तरह चित्रों की एक लम्बी शृंखला है यह पुस्तक। जैसे ये गुफा-चित्र मानव निर्मित नहीं लगते।लगता है चट्टानों और इसके आसपास के जंगलों की तरह आदिम काल से सब एक साथ ही उगे हैं। इस पुस्तक के अधिकांश चित्र प्राकृतिक हैं लेकिन उनके बीच-बीच में स्थित मानव निर्माण भी इस संवेदना के साथ चित्रित हैं कि सब एकाकार होकर अलौकिक बन गए हैं।

पोर्ट ब्लेयर के लिए कलकत्ता से पानी का जहाज लेना होता है। लेखक पंजाब मेल से जा रहा है। हावड़ा आने वाला है। एक पंक्ति–'मेल की गति अब वैसी नहीं रही। गंतव्य का आभास मिलते ही छंद के चरण मंदाक्रांता हो जाते हैं।' 'हावड़ा ब्रिज-अंडमान का प्रवेश द्वार।' स्ट्रैंड रोड स्थित भारतीय नौवहन निगम के दफ्तर में अपनी उपस्थिति दर्ज करवाई। लेकिन टिकट कब मिलेगा? जब जहाज छूटेगा? जहाज कब छूटेगा? जब अंडमान भेजा जाने वाला पंडित नेहरू का भस्म-कलश दिल्ली से आएगा। एम. वी. अंडमान को इसी सेलिंग से पंडित नेहरू के भस्म-कलश को पोर्टब्लेयर पहुँचाने का गौरव प्राप्त होने जा रहा है।' पोर्ट ब्लेयर पहुँचकर– 24 जून 1964, को नेहरू जी के भस्म-कलश के आगमन पर सार्वजनिक अवकाश है।

सभी संस्थान, कार्यालय और बाजार बंद हैं। खुले हैं– 'टीस के द्वार, कसक के गवाक्ष, हूक के वातायन'। बंदी बस्ती बसाने के लिए सर्वेयर आर्चीबाल्ड ब्लेयर ने जिस स्थान को चुना वह उसके नाम के पीछे कहलाया-पोर्ट ब्लेयर। लेखक कहता है–लेफ्टिनेंट आर्चीबाल्ड ब्लेयर, तुम्हारा सर्वेक्षण प्रभु ईसा मसीह की करुणा के बिलकुल विरुद्ध है। यह द्वीप 'दंड-द्वीप' के योग्य नहीं है। अभिशप्त नहीं है कोई मानव, कोई मानवेतर।' द्वीपों की सबसे पुरानी हिंदीसेवी संस्था और आकाशवाणी के बारे में–'हिंदी साहित्य कला परिषद् यहाँ की एकमात्र हिंदी संस्था है। एक अभिभावक राष्ट्रभाषा का, एक संरक्षक हिंदी अस्मिता का'।

'जब भी यहाँ की हिंदी का इतिहास लिखा जाए तो उसमें उस समय आल इण्डिया रेडियो में कार्यरत, पोर्टब्लेयर में हिंदी के साहित्यिक वातावरण के निर्माता 'राजनारायण बिसारिया का पोर्टब्लेयर' नाम से एक अध्याय अवश्य होना चाहिए'।

पोर्ट ब्लेयर से ग्रेट निकोबार के रास्ते में कोई पचास-साठ किलोमीटर दूर 'हट बे' से पहले रात्रि में समुद्र में डाल्फिनों का एक दृश्य देखें–'पानी के विस्तार पर डालफिन मछलियों का नृत्य हो रहा है। वे सब लोच ले-लेकर उछल भर रही हैं। उनकी देह की तिर्यकता आकाश में मेहराब बनाते हुए पानी में प्रवेश कर रही है। पानी के प्राचीर को तोड़कर आकाश में छलांग लगाना और फिर अथाह में समाहित हो जाना। यह बिम्ब महर्षि वाल्मीकि की रामायण में नहीं है, वेदव्यास के महाभारत में नहीं है। कवि कुलगुरु कालिदास, तुम्हें भी यह दृश्य कहाँ देखने को मिला होगा'?

इसी यात्रा में शाम को लेखक जहाज के डेक पर बच्चों और पत्नी के साथ लेटा हुआ है–'खुला समुद्र, खुला आकाश, तारागण, सप्तर्षि मंडल, आकाशगंगा। मस्तूल शेषनाग फणमंडल की छाया कर रहा है। प्रलय के पानी में खड़ा है बरगद और बरगद के पत्ते पर शयन कर रहा है शिशु युगल'। ग्रेट निकोबार के इंदिरा पॉइंट के लाईट हाउस के बिम्ब की प्रलायोपरांत उत्तुंग शिखर पर चिंतातुर बैठे मनु से तुलना करें–'कौन है वह, जो रात के सन्नाटे में, उस निर्जन एकांत में जोत जगाए एकाकी बैठा है?

अपने गाँव से दूर, अपने घर परिवार से वियुक्त। जो न हमारी भाषा का है, न हमारी जाति का है, न हमारे धर्म का है, न हमारे देश का है। तथापि वह बस यही चाहता है जो जहाज भी इधर से गुजरे, वह सुरक्षित अपने गंतव्य की और निकल जाए। 'कैम्बल बे में जिस मुहूर्त में भूतपूर्व भारतीय सैनिक परिवार की कुलवधू ने गृहप्रवेश किया उसी मुहूर्त में वहाँ विधिवत भारतीयता का प्रवेश हुआ। इन सेटलरों का एक बिम्ब–'हम यहाँ आदिम रात के अंधेरों में रुदन-महोत्सव मनाने नहीं आए हैं। अरणियों के भीतर पैठी आग को प्रज्वलित कौन करेगा? गलतिया नदी के मगरमच्छ की तरह अपने मनोवांच्छित को दबोचते हुए पूंछ के बल पर पानी पर कौन खड़ा होगा? माउंट थूलियर, पराहत होने के लिए नहीं आए हैं ये रणबाँकुरे।' इन्हीं का एक और जीवंत शब्द चित्र–'उनसे भी सुन्दर हैं– ग्रेट निकोबार में भू दृश्य, आरण्यक छवियाँ, वर्षावनों से आच्छादित पर्वत और मीठे पानी की नदियाँ।

उनसे भी सुन्दर है–उज्ज्वल नीलमणि समुद्र, प्रभात और संध्याएँ, एकांत और निस्तब्धताएँ, आदिम सरीसृप, पशु-पक्षी, आदिम संस्कारों वाली वर्षा ऋतु, और वर्ष ऋतु की अमवस्याएँ। लेकिन सबसे सुन्दर है– सेटलरों की पत्नियों का मौन समर्पण। गृहणियों के सपनों में तरंगित उनके परिवारों का गौरवशाली अनागत'। लेखक का कवि-मन इनके सौन्दर्य को और बढ़ा देता है। इन सुदूर इलाकों में पत्र का क्या महत्त्व है इसे कोई मेघदूत या यहाँ का घर से दूर प्राणी ही जान सकता है। जहाज से पोर्ट ब्लेयर होते हुए महीने में अधिक से अधिक दो बार ही पत्र आ पाते हैं।

यह जहाज नहीं, मुख्य भूमि के रामगिरि से चलकर आया मेघदूत है। जिस दिन पत्र आते हैं वह पत्र-दिन होता है, पत्रोन्माद का दिन। पत्रों के अतिरिक्त कोई काम करने की बाध्यता नहीं। जैसे ही पत्र मिलता है उसका उत्तर भी तो इसी लौटते जहाज से जाना है। और यदि वेतन मिला हुआ है तो मनीआर्डर भी तो इसी जहाज से घर जाएगा। नेताजी ने सबसे पहले यहाँ जापानी प्रभुत्त्व के समय स्वाधीन भारत का झंडा फहराया और इन द्वीपों को क्रमशः 'शहीद' और 'स्वराज' नाम दिया लेकिन वे शब्द प्रचलित नहीं हो सके। लेखक कहता है–'जिस प्रकार 'गंगा' शब्द में आशीर्वाद देती, कलकल निनाद करती देवापगा की छवि दिखाई देती है उसी प्रकार अंडमान-निकोबार शब्द से दोनों द्वीप समूह मानस में झिलमिलाने लगते हैं। इन दो शब्दों में अंडमान की नीग्रोवासी तथा निकोबार की मंगोलवासी आदिम जनजातियाँ अपनी-अपनी आदिमता के साथ प्रतिबिंबित होती हैं।

अंडमान और निकोबार ये दो कालजयी शब्द-ब्रह्म हैं जिनका विकल्प ढूँढ़ना मूढ़ता है। अर्थ की खोज करना व्यर्थ है। निरर्थक हैं ये शब्द। लेकिन अपनी निर्रथकता में ही ये महान हैं। कुल मिलाकर सभी शब्द चित्र पाठक को मंत्रबिद्ध कर देते हैं। कई दिनों तक लेखक की शैली और बिम्बों की खनक कानों में बजती रहती है। शेष तो यही कि मिठाई का वर्णन उसका असली स्वाद नहीं दिला सकता वैसे ही इस पुस्तक का असली आनंद तो एक बार द्वीपों की यात्रा करने के बाद ही आ सकता है। फिर भी मैं श्रेष्ठ हिंदी गद्य के पाठकों के लिए अपनी विशिष्ट शैली और भाषा के विशिष्ट तेवर वाली यह यह पुस्तक पढ़ने की अनुशंसा ज़रूर करूँगा। ●

विश्वा के वर्ष 2025 में बने नए आजीवन सदस्य : स्वागत !

Mr. Ashish Agrawal, Sugar Land, TX
Mrs. Nidhi Sharma, Charlotte, NC
Mrs. Reeta Bharthi, Charlotte, NC
Mr. Deepak Swain, Shaker Heights, OH
Mrs. Krishna K, Lal, Strongsville, OH
Mrs. Parul Mehta, Solon, OH
Mrs. Reena Chakraborty, Willoughby Hills, OH
Mrs. Sweta Chari, Avon, OH
Mrs. Kiran Kumari, Charlotte, NC
Mrs. Jaya Sharma, Mathews, NC
Mrs. Rani Dangi, Charlotte, NC
Mr. Anupam Parganiah, Southgate, TX
Mrs. Reeta Prakash Balwani, Avon Lake, OH
Mr. Mahesh Karwa, Carmel, IN
Mr. Dipak Chaurasiya, Houston, TX
Mr. Anand Satyam, Solon, OH
Mr. Rahul Jain , Macedonia, OH
Mrs. Sonal Pakvasa, Akron, OH
Dr. Aasf G Shaikh, Moreland Hills, OH
Mr. Pawan Soin, Solon, OH
Mr. Baljit Kumar, Brecksville, OH
Mr. Rajesh Patel, North Royalton, OH
Mrs. Binta Patel, Broadview Hts, OH
Mr. Sanjeev Sinha, Solom, OH
Mrs. Divya Tripathi, Waxhaw , NC
Mrs. Smita Rao, North Royalton, OH
Mr. Ashok Kumar, Parma, OH
Mr. Raj Kumar, Massillon, OH
Mr. Manish Jain, Copley, OH

भारतीय संविधान : जनता का संविधान

समीक्षक : डॉ. अरुण कुमार त्रिपाठी

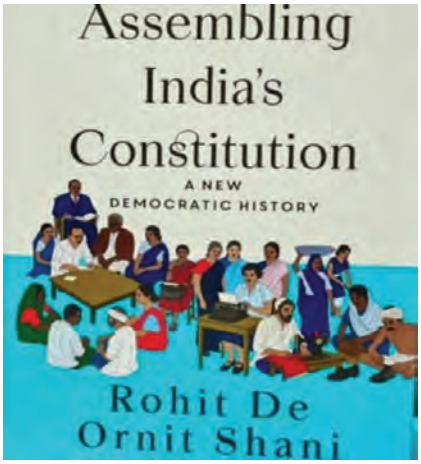

येल विश्वविद्यालय में इतिहास के प्रोफेसर रोहित डे और हाइफा (इजराइल) विश्वविद्यालय में एशियाई अध्ययन की एसोसिएट प्रोफेसर ओर्नित शानी ने सितंबर 2025 में आई 'असेंबलिंग इंडियाज कांस्टीट्यूशनः ए न्यू डेमोक्रेटिक हिस्ट्री' (भारतीय संविधान का निर्माणः एक नया लोकतांत्रिक इतिहास) के माध्यम से एक नया दृष्टिकोण प्रस्तुत किया है।

यह पुस्तक इस अभिजात दृष्टिकोण को नकारती है कि संविधान का निर्माण महज 299 विद्वानों, वकीलों और जनप्रतिनिधियों ने किया और उसकी बहस महज महज उतनी ही है जितनी संविधान सभा की पांच हजार पृष्ठों की बहस के नाम से प्रकाशित है। वास्तविकता यह है कि जिस समय भारत का संविधान बन रहा था उस समय देश के दलितों, पिछड़ों, आदिवासियों, महिलाओं और अल्पसंख्यकों समेत अन्य तबकों के भीतर संविधान से नई अपेक्षाएँ अंकुरित हो रही थीं। वे अपनी सभाओं में पारित प्रस्तावों के माध्यम से अपनी मांगों को संविधान सभा की सलाहकार समितियों के समक्ष रख रहे थे।

यह पुस्तक यह बताती है कि जनवरी 1947 में अकोला में हुए अखिल भारतीय महिला सम्मेलन ने किस प्रकार महिला अधिकारों का चार्टर तैयार किया था और उसे संविधान सभा को भेजा था। इसी तरह नाई जाति के लोगों ने किस तरह की मांग उठाई थी और उससे संविधान सभा को अवगत कराया था। संविधान निर्माण के दौरान न सिर्फ बच्चों के अधिकारों का सवाल उठा बल्कि अल्पसंख्यकों के अधिकारों का सवाल भी उठा और वह संविधान सभा के बाहर होने वाली सभाओं के माध्यम से उठाया गया। किस तरह खासी राज्य के प्रतिनिधि सरदार पटेल से मिले और अपनी बात रखी।

दोनों लेखक बताते हैं कि मई 1947 में बंगाल में पद्मा नदी के मुहाने पर बसे मोसालची समुदाय के 2000 परिवार की ओर से संविधान सभा के अध्यक्ष को पत्र लिखा गया कि चूंकि अब तक सब कुछ अनिश्चित था इसलिए हमने अपनी कोई मांग नहीं रखी थी। लेकिन अब जबकि संविधान का निर्माण हो रहा है तो हम चाहते हैं कि हमारे साथ न्याय हो और हमें विधानसभा में अलग प्रतिनिधित्व दिया जाए साथ ही हमारी संस्कृति और परंपरा की रक्षा की जाए।

चूंकि यह समुदाय नदी की धारा से निरंतर बदलती रहने वाली धरती पर रह रहा था इसलिए उन्हें इस बात की चिंता थी कि कैसे अंतरराष्ट्रीय सीमा के बदलने के साथ वे दूसरे देश के नागरिक बन सकते हैं। वैसे तो वे इस्लाम के अनुयायी कहे जाते थे लेकिन उन्हें मुस्लिम समुदाय भी अपना हिस्सा नहीं मानता था। इसलिए वे अपनी एक सुनिश्चित स्थिति चाहते थे। ऐसे ही नाई समुदाय ने संविधान सभा को अपना ज्ञापन देते हुए मांग की थी कि उनके लिए आवास और रोजगार की व्यवस्था की जाए। उन्हें अपनी गरीबी की चिंता थी और यह भी चिंता थी कि संसदीय संस्थाओं में पिछड़ा वर्ग का प्रतिनिधित्व कैसे होगा।

लेखकों ने बड़ी मेहनत के साथ उन तमाम दस्तावेजों को जमा किया है जो उत्तर में हिमालय की गोद में बसे लाहौल स्पीति में तैयार हो रहे थे तो दक्षिण के कुट्टेनगुंडम में बन रहे थे। एक ओर वे सौराष्ट्र देश और चिटगाँव की पहाड़ियों में तैयार किए जा रहे थे तो दूसरी ओर स्टाकहोम और कैलीफोर्निया और दूसरे अंतरराष्ट्रीय मंचों पर भी बन रहे थे। एक ओर देसी रियासतों में बसी 9.3 करोड़ की आबादी अपने भविष्य के लिए चिंतित थी तो दूसरी ओर 3 करोड़ आदिवासी जनता अपने अस्तित्व को लेकर जागरूक हो रही थी।

रोहित डे और उनकी सहलेखिका ओर्नित शानी का मानना है कि तथ्यात्मक रूप से यह सही है कि संविधान का ढांचा 1919 और 1935 के भारत सरकार अधिनियम पर आधारित है और जब 9 दिसंबर 1946 को पहली बैठक हुई तब महज 205 लोग उपस्थित थे जिनमें दस महिलाएँ थीं। लेकिन संविधान निर्माण की यह प्रक्रिया संसदीय कक्ष के भीतर तक ही सीमित नहीं थी बल्कि उसके बाहर भारत जैसे विभाग भूभाग से लेकर भारत के बारे में चिंता करने वाले अंतराष्ट्रीय स्तर पर बसे समुदायों में भी तेजी से चल रही थी। लोग तरह तरह के असमंजस में थे। भारत का विभाजन हुआ नहीं था लेकिन उसके घने बादल छाए हुए थे। लोगों को मालूम नहीं था कि उनकी नियति क्या होगी। इसलिए उनकी सक्रियता बेचैनी भरी भी थी।

रोहित डे अपने नए किस्म के इतिहास के माध्यम से यह कह रहे हैं कि अब तक भारत के विभिन्न राजनेताओं और विद्वानों ने संविधान के दायरे को सीमित करते हुए यह व्याख्या की है कि भारतीय संविधान पर तो विदेशी प्रभाव है और उसमें भारतीय परंपरा के तत्व अनुपस्थित हैं। उसमें भारतीय समाज की समझ और उसका जीनियस अनुपस्थित है। इसी आधार पर संघ परिवार ने भी आरंभ में संविधान को मानने से इंकार कर दिया था और उसका कहना था कि जब हमारे पास

'मनुस्मृति' पहले से है तो हमें नए संविधान की क्या आवश्यकता है। दूसरी ओर कांग्रेस पार्टी संविधान निर्माण में अपना अधिकतम श्रेय लेने से नहीं चूकती।

ग्रैनविल आस्टिन जैसे अमेरिकी इतिहासकार ने अपनी पुस्तक 'भारतीय संविधान का निर्माणः एक राष्ट्र की आधारशिला' में यह कहा है कि संविधान निर्माण की पूरी प्रक्रिया कांग्रेस के चार नेताओं राजेंद्र प्रसाद, पंडित जवाहरलाल नेहरू, सरदार बल्लभभाई पटेल और मौलाना अबुल कलाम आजाद के इर्द गिर्द घूम रही थी। वे ही लोग कांग्रेस पार्टी के प्रमुख थे, वे ही अंतरिम सरकार में थे और वे ही संविधान सभा को संचालित कर रहे थे। उधर यह कहने वाले भी हैं कि संविधान का निर्माण तो अकेले डॉ भीमराव आँबेडकर ने अपनी सेहत को दांव पर लगाकर तैयार किया इसलिए संविधान के पिता और निर्माता तो वे ही हैं।

हालांकि डॉ आँबेडकर ऐसा कोई भी श्रेय लेने से इंकार करते हैं। दूसरी ओर समाजवादी, गांधीवादी और साम्यवादियों की एक जमात ऐसी है जो संविधान सभा के प्रतिनिधियों के आधे अधूरे प्रतिनिधित्व के कारण उससे असहमत रही है और यही वजह है कि वे संविधान सभा में शामिल नहीं हुए। उन लोगों ने अपना-अपना संविधान अलग अलग बनाया था।

रोहित डे ने व्यक्ति केंद्रित, पार्टी केंद्रित, विचारधारा केंद्रित संविधान निर्माण की इस बहस को अपनी इस किताब से एकदम नया मोड़ दे दिया है। उन्होंने न्यायालय, वकील और बौद्धिकों तक केंद्रित संविधानवाद से दूर खड़े होकर उसे लोक संविधानवाद से जोड़ दिया है।

मशहूर न्यायविद उपेंद्र बख्शी ने तो इसे नए किस्म का विधिशास्त्र कहा है। वे और दूसरे कई संविधान विशेषज्ञ कहते हैं कि रोहित डे और ओर्निट शानी ने संविधान लेखन का दायरा 299 सदस्यों के घेरे से निकाल कर करोड़ों भारतीयों तक पहुँचा दिया। यानी संविधान तो करोड़ों गैर पढ़े लिखे भारतीय लिख रहे थे। मालूम हो कि भारत के विभाजन से पहले जो संविधान सभा बनी थी उसमें 389 सदस्य थे। लेकिन विभाजन के बाद यह संख्या घटकर 299 रह गई थी। उन्होंने जाति, धर्म और विचारधारा के संकुचित दायरे से निकालकर उस वास्तविक भारत माता की तलाश की है जो न तो राष्ट्रीय स्वयं सेवक संघ के शताब्दी वर्ष पर जारी सिक्के पर अंकित है और न ही नायकत्व का आख्यान रचने वाले व्यक्ति केंद्रित इतिहासकारों के सीमित दायरे में।

इसमें संविधान निर्माण की अदृश्य दुनिया को दृश्य बनाया गया है और हम भारत के लोग की असली पहचान की गई है जिसे संविधान आज तक ढूंढ रहा है और जिसके पास तक पहुँचते पहुँचते रुक जाता है। हालांकि रोहित डे इससे पहले अपनी चर्चित पुस्तक 'ए पीपुल्स कांस्टीट्यूशनः द एवरी डे लाइफ आफ लॉ इन द इंडियन कांस्टीट्यूशन' में यह व्यक्त कर चुके हैं कि किस प्रकार तमाम मुकदमों के माध्यम से इस देश की जनता ने संविधान को अपने जीवन में अंगीकार किया है।

अंगीकरण की यह प्रक्रिया आज भी जारी है लेकिन दिक्कत यह है कि कॉरपोरेट और धार्मिक संस्थाओं ने उस पर अपनी सत्ता की आकांक्षा की धुंध बिखेर रखी है। वे संविधान से ऊब चुके हैं और अपनी विकास की आकांक्षाओं के लिए उसे तोड़ना चाहते हैं। जरूरत है हम भारत के लोगों के इन अथक प्रयासों को जाति और वर्ग के संकीर्ण दायरे से निकाल कर उसे वास्तविक रूप में व्यक्त करने की। संविधान जिंदा दस्तावेज है और उसे जनता ने बनाया है इस तथ्य को जनता के बीच ले जाने की।

बड़े लोग : बड़े विचार

बैरन डी मॉन्टेस्क्यू

बैरन डी मॉन्टेस्क्यू फ्रांस के राजनैतिक विचारक, न्यायविद्, दार्शनिक, इतिहासकार एवं उपन्यासकार भी थे।

1. किसी एक के साथ किया गया अन्याय भी सभी के साथ नाइंसाफी है।
2. महान बनने के लिए लोगों के साथ खड़े रहें, उनके ऊपर नहीं।
3. प्रकृति ने हर इंसान को एक जैसा बनाया है, लेकिन वे इस समानता को कायम नहीं रखते।
4. दुनिया में सफल होने के लिए हमें सीधा-सरल दिखना, लेकिन बुद्धिमान होना जरूरी है।
5. धर्म को लेकर लड़ाई इसलिए नहीं होती कि एक से ज्यादा धर्म हैं, बल्कि इसलिए होती है कि हम में सहनशीलता कम है।
6. अगर हम खुश होना चाहते तो ये आसान था। लेकिन हम दूसरों से ज्यादा खुश होना चाहते हैं, जो कठिन है। हम उन्हें उतना खुश मान लेते हैं, जितने वे होते नहीं हैं।
7. बहुत थोड़ा-सा जानने के लिए भी हमें बहुत ज्यादा पढ़ने की जरूरत होती है।
8. ज्ञान मानवता को ज्यादा मानवीय बना देता है, तर्क दयालुता की तरफ झुकता है, लेकिन पक्षपात हर तरह की कोमलता खत्म कर देता है।
9. जो व्यक्ति बहुत ज्यादा सोचते नहीं हैं, वो ही बहुत ज्यादा बोलते हैं। गम्भीर सोचें और मितभाषी बनें।

सुविधा की कीमत

डॉ. दुर्गाप्रसाद अग्रवाल

हम जैसे लोग, जिन्होंने अपने परिवेश को तेजी से बदलते देखा है, आज के जीवन की सुगमता को देखकर आश्चर्यचकित हैं। यह सुगमता खासतौर पर उन लोगों के लिए उल्लेखनीय है, जिन्होंने समय के साथ कदम मिलाने का प्रयास किया। लेकिन क्या यह सुगमता वास्तव में उतनी ही लाभकारी है, जितनी दिखाई देती है? इसे हासिल करने की कीमत क्या है? क्या हमने सुविधा के बदले में कुछ अनमोल खो दिया है? आइए, पहले देखें कि तकनीक ने हमारा जीवन कैसे आसान बनाया है, और फिर विचार करें कि इसकी लागत कितनी भारी है–सामाजिक, आर्थिक, और मनोवैज्ञानिक स्तर पर।

बात ज्यादा पुरानी नहीं, जब मोहल्ले में किसी एक घर में टेलीफोन होना विशेष बात थी। उस घर को 'टेलीफोन वाले' के रूप में जाना जाता था। टेलीफोन का तार लोहे के एँगल तक खींचा जाता, और पड़ोसी बिना पूछे उसका नंबर अपने जान-पहचान वालों को दे दिया करते। इसे 'पीपी' नंबर कहते थे। मुझे याद है, जब मेरे एक पड़ोसी के घर में टेलीफोन लगा, तो पूरा मोहल्ला उनके घर की ओर देखता था। बच्चे उत्साह में तार को छूने की कोशिश करते, और बड़ों की नजरें गर्व से चमकतीं। रेडियो भी कभी ऐसी ही हैसियत रखता था। छत पर एंटीना लगाना होता था जो दूर-दूर तक आपकी हैसियत को उजागर करता था। और डाक-तार विभाग से रेडियो सुनने के लिए लाइसेंस लेना अनिवार्य था। साइकिल चलाने के लिए भी नगरपालिका से टोकन खरीदना पड़ता था, जो उसकी नंबर प्लेट होता था। टेलीफोन कॉल्स एक्सचेंज के माध्यम से लगते थे, और टेलीफोन ऑपरेटर की कस्बों-शहरों में बड़ी प्रतिष्ठा थी। तार (टेलीग्राम) आना अक्सर बुरी खबर का संकेत था। तारवाला साइकिल पर आता, तो मोहल्ले की सांसें थम जातीं। बाद में बधाई के तार भी शुरू हुए, लेकिन उनकी गिनती कम थी।

बैंक में खाता होना भी बड़ी बात थी। पैसे निकालने के लिए चेक या निकासी पर्ची जमा कराना, टोकन लेना, और लंबी कतार में इंतजार करना एक छोटा-मोटा संग्राम था। बिजली, पानी, या टेलीफोन का बिल जमा करने के लिए अलग-अलग कतारों में घंटों खड़ा होना पड़ता। मुझे याद है, एक बार बिजली बिल जमा करने की आखिरी तारीख थी, और मैं लाइन में देर तक खड़ा रहा, सिर्फ यह सुनने के लिए कि 'काउंटर बंद हो गया, कल आइए।' सिनेमा हॉल की टिकट खिड़की पर धक्का-मुक्की आज की मल्टीप्लेक्स पीढ़ी के लिए शायद अकल्पनीय हो। एक बार मैंने दोस्तों के साथ 'शोले' देखने की ठानी, लेकिन टिकट खिड़की पर इतनी भीड़ थी कि हमें ब्लैक में टिकट खरीदना पड़ा। पत्र लिखना, लिफाफे में बंद करना, डाक टिकट लगाना, और डाकघर तक जाना–यह सब रोजमर्रा का हिस्सा था। लेकिन इन सबके बीच एक सामाजिकता थी, जो आज गायब है।

आज सब कुछ बदल गया है। हर हाथ में स्मार्टफोन है, जो रेडियो, कैमरा, रिकॉर्ड प्लेयर, कैलकुलेटर, घड़ी–सब कुछ बन गया है। यूपीआई ने वॉलेट और बैंक को हमारी जेब में ला दिया है। दुनिया के किसी भी कोने में तुरंत बात करना, वीडियो कॉल करना, टिकट बुक करना, या खरीदारी करना–सब कुछ घर बैठे संभव है। मल्टीप्लेक्स और ई-कॉमर्स ने सिनेमा और शॉपिंग के अनुभव को पूरी तरह बदल दिया है। उबर-ओला ने यात्रा को इतना आसान बना दिया कि अब रिक्शा बुलाने या चौराहे पर वाहन का इंतजार करने की जरूरत नहीं। रेल, हवाई जहाज, या सिनेमा का टिकट–सब कुछ एक क्लिक पर उपलब्ध है। पहले शहरों में किताबें ढूंढना मुश्किल था, लेकिन अब ई-कॉमर्स साइट्स अगले दिन किताबें घर पहुँचा देती हैं। मैं हर माह चार-पांच किताबें मंगवाता हूँ, और ऑर्डर के अगले दिन वे मेरे हाथ में होती हैं। फोटो खींचने के बाद रील धुलवाने या प्रिंट करवाने की जरूरत खत्म हो गई। गाना सुनने के लिए कैसेट या सीडी खरीदने की आवश्यकता नहीं। बिल भुगतान, होटल रिजर्वेशन, पर्यटन स्थलों के टिकट–सब कुछ सुगम और त्वरित हो गया है। पहले घर से लंबी अनुपस्थिति में बिल जमा करने की चिंता सताती थी, लेकिन अब स्वचालित भुगतान ने इसे भी खत्म कर दिया। एक बार मैंने विदेश यात्रा के दौरान अपने मोबाइल से बिजली बिल भरा, और यह अनुभव मेरे लिए जादुई-सा था।

यह सुगमता तकनीक को अपनाने का परिणाम है। मैं स्वीकार करता हूँ कि तकनीक के प्रति मेरा उत्साह और सीखने की ललक ने मुझे इसका लाभ उठाने में मदद की। मेरे कई हमउम्र लोग इसे अपनाने में हिचकते हैं, और यह उनका व्यक्तिगत चुनाव है। मैं केवल अपनी बात कहना चाहता हूँ। पहले मैं इन सुविधाओं का उत्साही प्रशंसक था, लेकिन अब मेरा दृष्टिकोण बदल गया है। मुझे लगता है कि इस सुगमता की कीमत हमें कई स्तरों पर चुकानी पड़ रही है।

पहला नुकसान है सामाजिकता का कम होना। पहले, बिल जमा करने या टिकट खरीदने की कतारों में अनजान लोगों से बातचीत होती थी। हंसी-मजाक, सुख-दुख की बातें, और छोटे-बड़े अनुभव साझा होते थे। एक बार कतार में खड़े एक बुजुर्ग ने मुझे बताया था कि कैसे सस्ते में यात्रा के टिकट बुक किए जा सकते हैं–यह जानकारी मेरे लिए अनमोल थी। एक अन्य बार, बैंक की लाइन में एक व्यक्ति से बातचीत में मुझे अपने शहर के किसी छिपे हुए पर्यटन स्थल के बारे में पता चला, जहाँ बाद में मैं परिवार के साथ गया। ये मुलाकातें थकान को भुला देती थीं और उपयोगी जानकारियाँ देती थीं। आज,

स्क्रीन पर उंगलियों के इशारे ने इन मुलाकातों को लगभग खत्म कर दिया। हमारी सामाजिकता अब व्हाट्सएप ग्रुप्स और सोशल मीडिया तक सिमट गई है, जहाँ भावनाओं की गहराई गायब है।

दूसरा, तकनीक के पीछे पूंजी का बड़ा खेल है। ई-कॉमर्स साइट्स सस्ते दामों पर सामान बेचकर उपकार नहीं कर रही हैं। उनका लक्ष्य स्थानीय व्यवसायों–रिक्शा वालों, ऑटो चालकों, छोटे दुकानदारों, किराना व्यापारियों– को ख़त्म करना है। मेरे मोहल्ले का एक रिक्शा चालक, जो मेरे बच्चों को स्कूल छोड़ता था, अब मजदूरी करने को मजबूर है, क्योंकि उबर-ओला ने उसकी आजीविका छीन ली है। हमारे पड़ोस की किराना दुकान, जहाँ मैं बचपन में सामान लाने जाता था, अब बंद हो चुकी है, क्योंकि लोग ऑनलाइन सामान मंगवाने लगे हैं। टेलीकॉम और कैब सेवाओं के उदाहरण हमारे सामने हैं। कुछ साल पहले एक टेलीकॉम कंपनी ने मुफ्त डेटा और कॉल्स देकर सभी को आकर्षित किया, लेकिन आज वह बाजार की एकमात्र बड़ी खिलाड़ी है, और छोटी कंपनियाँ गायब हो चुकी हैं। यह पूंजी का खेल हमारे स्थानीय अर्थतंत्र को कमजोर कर रहा है।

तीसरा, तकनीक ने हमें सुविधा के नाम पर निर्भरता की ओर धकेल दिया है। हमारी नई पीढ़ी को पत्र लिखना, कतार में धैर्य रखना, या स्थानीय दुकानदारों से मोलभाव करना नहीं आता। मेरे पौत्र को, जो कॉलेज में है, यह नहीं पता कि डाकघर कैसे काम करता है, क्योंकि उसने कभी पत्र नहीं लिखा। यह निर्भरता हमें अपनी स्वायत्तता से वंचित कर रही है। तकनीक ने हमें इतना आलसी बना दिया है कि हम छोटे-छोटे कामों के लिए भी ऐप्स पर निर्भर हैं। एक बार मेरा इंटरनेट बंद हो गया, और मुझे एहसास हुआ कि मैं अपने बिजली बिल का भुगतान नहीं कर पा रहा था, क्योंकि मैंने कभी ऑफलाइन प्रक्रिया सीखी ही नहीं। यह निर्भरता हमें कमजोर बनाती है।

चौथा, तकनीक का मनोवैज्ञानिक प्रभाव भी गंभीर है। स्मार्टफोन और सोशल मीडिया ने हमें तुरंत संतुष्टि की आदत डाल दी है। हम अब इंतजार करना नहीं चाहते। पहले, किसी दोस्त को पत्र लिखकर उसका जवाब आने का इंतजार एक खूबसूरत अनुभव था। आज, अगर कोई व्हाट्सएप मैसेज का जवाब तुरंत नहीं देता, तो हम बेचैन हो जाते हैं। यह बेचैनी हमारी मानसिक शांति को प्रभावित करती है। बच्चे और युवा घंटों स्क्रीन पर बिताते हैं, जिससे उनकी एकाग्रता और रचनात्मकता पर असर पड़ रहा है। मेरे पड़ोस का एक बच्चा, जो पहले गलियों में क्रिकेट खेलता था, अब दिन-रात मोबाइल गेम्स में खोया रहता है। क्या यह प्रगति है?

तकनीक ने हमारा जीवन सुगम बनाया है, इसमें कोई शक नहीं। लेकिन इस सुगमता ने हमसे सामाजिकता, स्थानीय व्यवसाय, स्वायत्तता, और मानसिक शांति को छीन लिया है। हमें विचार करना होगा कि यह नया कितना स्वीकार्य है। क्या हम सुविधा के लिए अपनी सामाजिक और आर्थिक जड़ों को दांव पर लगा सकते हैं? क्या हम चाहेंगे कि हमारी आने वाली पीढ़ियाँ केवल स्क्रीन पर जीने वाली मशीनें बन जाएँ? हमें यह तय करना होगा कि तकनीक को अपने जीवन का हिस्सा बनाना है या उसका ग़ुलाम बनना है। यह सवाल हमें भविष्य के लिए दिशा दे सकता है। हमें तकनीक का उपयोग करना चाहिए, लेकिन इस तरह कि हम अपनी मानवीयता, सामाजिकता, और स्वतंत्रता को बनाए रखें। शायद यही संतुलन हमें सच्ची प्रगति की ओर ले जाएगा। ●

देवी प्रसाद मिश्र की दो कविताएँ

1. प्रार्थना के शिल्प में नहीं

इन्द्र, आप यहाँ से जाएँ
तो पानी बरसे

मारुत, आप यहाँ से कूच करें
तो हवा चले

बृहस्पति, आप यहाँ से हटें
तो बुद्धि कुछ काम करना शुरू करे

अदिति, आप यहाँ से चलें
तो कुछ ढंग की संततियाँ जन्म लें

रूद्र, आप यहाँ से दफ़ा हों
तो कुछ क्रोध आना शुरू हो

देवियो-देवताओ! हम आपसे
जो कुछ कह रहे हैं
प्रार्थना के शिल्प में नहीं

2. औरतें यहाँ नहीं दिखतीं

औरतें यहाँ नहीं दिखतीं
वे आटे में पिस गई होंगी
या चटनी में पुदीने की तरह महक रही होंगी

वे तेल की तरह खौल रही होंगी
उनमें घर की सबसे ज़रूरी सब्ज़ी पक रही होगी

गृहस्थाश्रम की झाड़ू बनकर
अंधेरे कोने में खड़े होकर
वे घरनुमा स्थापत्य का मिट्टी होना देखती होंगी

सीलन और अंधेरे की अपठ्य पाण्डुलिपियाँ होकर
वे गल रही होंगी

वे कुएँ में होंगी या धुएँ में होंगी
आवाज़ें नहीं कनबतियाँ होकर वे
फुसफुसा रही होंगी

तिलचट्टे-सी कहीं घर में दुबकी होंगी वे
घर में ही होंगी
घर के चूहों की तरह वे
घर छोड़कर कहाँ भागेंगी

चाय पिएँ यह
उनकी ही बनाई है। ●

अनुत्तरित प्रश्न

सुशीला टाकभौरे

गूँजती है आवाज़
यदि किसी गहरे कुएँ से,
अँधेरी गुफा से कुछ कहा जाए
प्रतिउत्तर में ध्वनि गूँजती है।

मगर तुम
कभी जवाब नहीं देते
मुझे नगण्य मानते हो
या चाहते हो
परंपरा चलती रहे
उत्तर की हताशा में
मेरे तुम्हारे बीच के प्रश्न
खोते चले जाएँ।

तुम्हारा मौन, चिंतन
स्वामित्वपूर्ण बड़प्पन का भाव
एक आड़ है
मुझे कचोटने लगे हैं
अपने विचार
यह जानकर कि
मैं उपेक्षित हूँ।

मेरे भीतर के आकाश में
बवंडर गूँजता है
आँतों की ऐंठन
कलेजे को कचोटती है

सुनने की अकुलाहट में
श्रवण-शक्ति सुनती है
स्वयं के प्रश्न
हर बार
यही इतिहास दुहराया जाता है।

तुम नहीं जानते
वे सब अनुत्तरित प्रश्न
उतनी ही पीड़ा देते हैं
जितना कि
कोई आराधित भाव।
जो अधपुजा ही रह जाए
और असंतुष्ट भाव से
एक अभिशाप बन जाए।

अगर बन जाऊँ मैं
सनातन परंपरा को
तोड़ने हेतु
तुम्हारे लिए अभिशाप?

गहरे कुएँ तक पहुँचा दूँ
तुम्हारे चिंतन के–
आधार-ग्रंथ
टूटेगा मौन-व्रत
भविष्य की अँधेरी गुफा में
तब?

पावन श्रोता
मेरे प्रश्न के उत्तर
तुम अवश्य दोगे
केवल इतना ही नहीं–
उन्हें बार-बार दुहराते रहोगे।

श्रद्धांजलि

तत्कालीन पाकिस्तान में 1 जनवरी 1941 को जन्मे, विभाजन के बाद जयपुर आ बसे एक सरल इंसान और हिन्दी फिल्मों के कुंठाविहीन सहज अभिनेता गोवर्धन असरानी का 20 अक्टूबर 2025 को मुंबई में निधन।

झनक झनक पायल बाजे, नवरंग, दो आँखें बारह हाथ जैसी प्रसिद्ध हिन्दी और मराठी फिल्मों की नायिका संध्या शांताराम का 87 वर्ष की आयु में 4 अक्टूबर 2025 को निधन।

बनारस घराने के प्रसिद्ध गायक पद्मभूषण छन्नूलाल मिश्र का 89 वर्ष की आयु में निधन

हिन्दी की विविध विधाओं में प्रभूत लेखन करने वाले वरिष्ठ साहित्यकार पद्मश्री डॉ. रामदरश मिश्र का 101 वर्ष की आयु में 31 अक्टूबर 2025 को निधन। विनम्र श्रद्धांजलि!

विज्ञापन की दुनिया में पश्चिमी प्रभाव के स्थान पर भारतीय लहजे को स्थापित करने वाले, जयपुर में जन्मे 70 वर्षीय पीयूष पांडे का 23 अक्टूबर 2025 को मुंबई में निधन। याद रहे, दूरदर्शन पर विभिन्न भाषाओं में गाया गया प्रसिद्ध गीत 'मिले सुर मेरा तुम्हारा' उन्हीं का लिखा हुआ है। क्या आप उनकी पंच लाइने 'कुछ मीठा हो जाए', 'दो बूंद ज़िंदगी की', 'ठंडा मतलब कोकाकोला' आदि भूल सकते हैं?

अपने जमाने की प्रसिद्ध और प्रतिभाशाली वरिष्ठतम अभिनेत्री कामिनी कौशल का 98 वर्ष की आयु में निधन। फिल्मफेयर पुरस्कार के अतिरिक्त उनकी पहली ही फिल्म 'नीचा नगर' को अंतर्राष्ट्रीय सम्मान प्राप्त हुआ।

हिन्दी फिल्मों के लोकप्रिय और बहुआयामी अभिनेता धर्मेन्द्र का 24 नवंबर को 89 वर्ष की आयु में निधन

सरदार पटेल की सबसे ऊंची स्टैच्यू ऑफ यूनिटी बनाने वाले तथा विदेशों में लगी गांधी जी की प्रसिद्ध मूर्तियों के सर्जक पद्म भूषण राम सुतार का 100 वर्ष की आयु में 18 दिसंबर 2025 को निधन।

ज्ञानपीठ पुरस्कार से सम्मानित हिन्दी कवि, उपन्यासकार विनोद कुमार शुक्ल का 88 वर्ष की आयु में 23 दिसंबर 2025 को निधन

चित्रकारी का एक सबक

निज़ार कब्बानी
अनुवाद : दीपक वोहरा

मेरा बेटा रख देता है मेरे सामने अपना चित्रकारी का साज़ो-सामान
और मुझसे कहता है एक पक्षी बनाने के लिए
मैं ब्रश को डुबोता हूँ स्लेटी रंग में
और ताले और सलाखों के साथ एक चौकोर बनाता हूँ
उसकी आँखें हैरान हो जाती हैं:

'... लेकिन यह तो कैदख़ाना है, अब्बू,
क्या आपको पक्षी बनाना भी नहीं आता?'
*और मैं कहता हूँ: 'बेटा, मुझे माफ़ करना।
मैं भूल गया हूँ पक्षियों की आकृति बनाना।'
मेरा बेटा रख देता है मेरे सामने अपनी ड्रॉइंग बुक
और मुझे गेहूँ की बालियाँ बनाने को कहता है।

मैं कलम लेता हूँ
और एक बंदूक बना देता हूँ।
मेरा बेटा मेरी नासमझी पर हंस देता है,
अपेक्षा से कहता है,
अब्बू, क्या आपको गेहूँ की बालियाँ
और बंदूक का फ़र्क भी नहीं पता?

मैं उसको कहता हूँ, 'बेटा, मैं जानता था बहुत पहले
गेहूँ की बालियाँ, रोटी और गुलाब की आकृतियों के बारे में
लेकिन इस कठिन समय में
पेड़ भी मिल गए हैं फ़िरका-परस्तों से
और गुलाब ने भी ओढ़ ली है उदासीन थकान
इस सांप्रदायिक समय में गेहूँ की बालियाँ
और पक्षी हो गए हैं हथियारबंद
फ़िरका-परस्त संस्कृति और धर्म हो गए हैं सांप्रदायिक
बिना बन्दूक के ख़रीद नहीं सकते हो तुम एक रोटी भी
खेत से तोड़ नहीं सकते हो एक गुलाब भी
जब तक आपके चेहरे पर उग न आए कांटे
तुम एक किताब भी नहीं ख़रीद सकते
जब तक हो न जाए विस्फोट तुम्हारी उंगलियों में।

बिस्तर के किनारे बैठा है मेरा बेटा
और एक कविता सुनाने के लिए कहता है,
तकिए पर मेरी आँख से आँसू छलकता है
मेरा बेटा मेरे आँसू पोंछता है और हैरान होकर कहता है:
'लेकिन अब्बू यह तो आँसू है, कविता नहीं'
और मैं उसे बताता हूँ:
'मेरे बेटे, जब तुम बड़े हो जाओगे
और अरबी शायरी का दीवान पढ़ोगे
तुम स्वयं जान जाओगे कि शब्द और आँसू एक ही हैं
और अरबी कविता
आँसू के सिवाय कुछ नहीं
जो रोते हुई अंगुलियों से लिखी गई है।'

मेरा बेटा अपनी कलम, अपने रंग वाले बक्से को
रखता है मेरे सामने
और मातृभूमि बनाने के लिए कहता है
और मैं रोते हुए सिर झुका लेता हूँ।

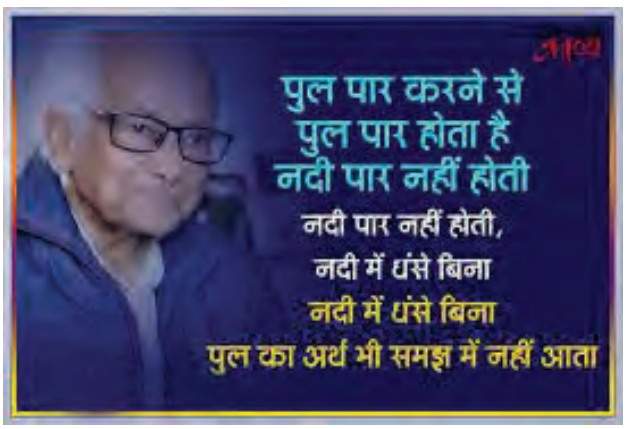

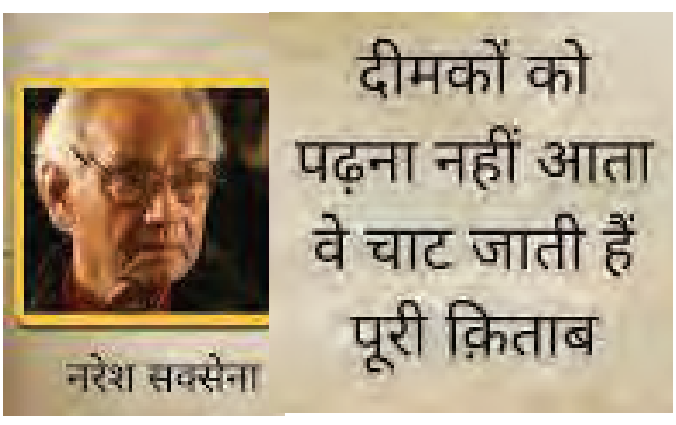

ओमसिंह अशफाक़ की पाँच कविताएँ

सार्थक मानवीय सोच के सहज रचनाकार,
संपर्क : 70158-41314 //omsingh26333@gmail.com

1. कविता का जन्म

फ़सल सी उगती है कविता
झेलती मार पाले और सूखे की
बह जाती है बाढ़ में यकदम
जैसे गई फ़सल पकी पकाई
चली आती है कभी खिंची
कोयले की तरह खान से
लथपथ मिट्टी और कीचड़ से
करती हुई दिमाग को
पसीना-पसीना
कभी लेती है जन्म ऐसे
जैसे हुई हो नार्मल डिलीवरी घर में
और देखती है सद्य-प्रसूता मां
नवजात शिशु को बड़े चाव से
लेटा हुआ बगल में

2. दृष्टि

आँखें सच की लिपि को
पढ़ सकती हैं
उसका संदेश नहीं
संदेश आत्मसात होता है
महसूसती नज़र से
धुँधला दिया है जिसको
अतिज्ञानियों ने
कहकर दिव्यदृष्टि

3. अलाव

ठंडी रात में
खुले आकाश तले
अलाव तापते
बेघर परिवार की मौलिकता
उसे खूब लुभाती है
पर डरता है यह सोचकर
कि किस पते पर आती होगीं
उनकी चिट्ठियाँ और
कहाँ रहती होगी खुशखबरी

4. ऊर्जा

परमाणु ऊर्जा सिर्फ़
बम केअंदर नहीं होती
वह मौजूद रहती है
बम बनाने वाली दिमागों में
कविता में भी विद्यमान है
परमाणु ऊर्जा
फ़र्क ये है कि
बम ध्वंस करता है और
कविता निर्माण

5. सीखना

पैदल चलना सेहत के लिए ही जरूरी नहीं
जरूरी है इसलिए भी ताकि बना रहे
धरती से आदमी का रिश्ता
पैदल चले बिना नहीं हो पाती
धरती के कड़ियलपन और धसान
की पड़ताल
इस अर्थ में हमारे पैर
आँखों का काम करते हैं
पर आँखें देख नहीं पातीं
बिना प्रकाश के
और पैर पढ़ लेते हैं धरती को छूकर
पैर केवल रास्तों की लंबाई नहीं बताते
चढ़ाई-उतराई का संयम और श्रम की
नाप-जोख भी करते हैं पैर
वे परिचित कराते हैं
रास्तों के जोखिमों से भी
ज़रा-सी लापरवाही हुई कि
गिर जाते हैं हम औंधे मुँह
बन जाता है जीवन का पहला सबक
जो नहीं भूलता जीवन भर
टेढ़े-मेढ़े रास्तों पर चलते हुए
मानचित्रों में नहीं मिलते नए रास्ते
हवाई सर्वेक्षण भी नहीं कर सकते
उनकी शिनाख़्त
पैदल ही जाना पड़ता है उन्हें खोजने
अन्यथा हम एक दिन खुद को
दलदल में धँसा पाते हैं।

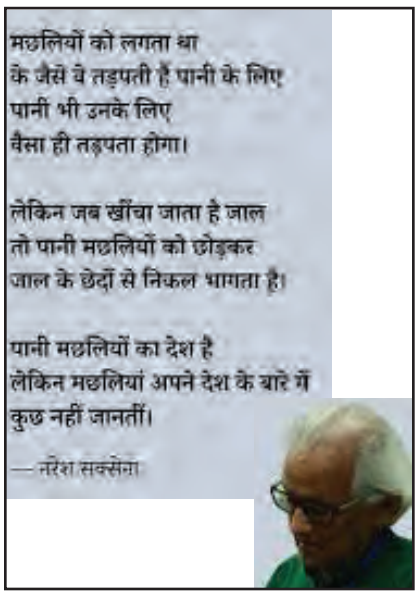

जेसिन्टा की एक कविता

28 दिसंबर 2025 को बंगलुरु की साहित्यिक संस्था 'शब्द' का एक लाख रुपये का 'अज्ञेय शब्द सृजन सम्मान' प्रसिद्ध आदिवासी युवा कवयित्री जसिन्ता केरकेट्टा को प्रदान किया गया। बधाई।

विश्वा के पाठकों के लिए जसिन्ता केरकेट्टा का नाम अपरिचित नहीं है।

परवाह

माँ
एक बोझा लकड़ी के लिए

क्यों दिन भर जंगल छानती,
पहाड़ लाँघती,

देर शाम घर लौटती हो?
माँ कहती है :

जंगल छानती,
पहाड़ लाँघती,

दिन भर भटकती हूँ
सिर्फ़ सूखी लकड़ियों के लिए।

कहीं काट न दूँ कोई ज़िंदा पेड़!

हिन्दी में शोध का धंधा

डॉ. अमरनाथ

लेखक कलकत्ता विश्वविद्यालय के पूर्व प्रोफेसर एवं हिन्दी विभागाध्यक्ष है। सम्पर्क–ईई-164/402, सेक्टर-2, साल्टलेक, कोलकाता-700091 ईमेल: amarnath.cu@gmail.com मो. 9433009898

उच्च शिक्षा की सर्वाधिक महत्वपूर्ण उपलब्धि है अनुसंधान, उच्च शिक्षा का सर्वाधिक महत्वपूर्ण दायित्व है अनुसंधान और उच्च शिक्षा का सर्वाधिक उपेक्षित क्षेत्र है अनुसंधान। आज के अनुसंधान की दशा देखकर लगता है कि शोध को उपाधि का पर्याय मान लेना आधुनिक भारत की एक दुर्घटना है और इसके लिए हमारी वह व्यवस्था सबसे ज्यादा जिम्मेदार है जिसने इसे नौकरी से जोड़ दिया और इस तरह मांग और पूर्ति के गणित में उलझा दिया।

यह सही है कि सभ्यता के विकास में अबतक जो कुछ भी हमने अर्जित किया है वह सब अनुसंधान की देन है और जिज्ञासु मनुष्य, साधनों के अभाव में भी अपनी स्वाभाविक प्रवृत्ति के कारण अनुसंधान से जुड़ा रहता है। जेम्सवाट ने किसी प्रयोगशाला में पता नहीं लगाया था कि भाप में शक्ति होती है और न तो धरती में गुरुत्वाकर्षण की शक्ति का पता लगाने के लिए न्यूटन को किसी प्रयोगशाला मे जाना पड़ा था। उनकी जिज्ञासु प्रवृत्ति ने अभावों में भी उन्हें इतने बड़े सत्य के उद्घाटन के लिए विवश कर दिया।

हिन्दी में अनुसंधान की नींव एक विदेशी जिज्ञासु ने अपने व्यक्तिगत प्रयास से सामाजिक दायित्व निभाने के लिए रखी थी, वे थे 'गार्सां द तासी'। 1839 ई. में फ्रेंच में "इस्त्वार द ला लितरेत्युर ऐंदुई ऐंदुस्तानी" नामक उनकी कृति प्रकाशित हुई थी तथा इसके आठ वर्ष बाद इसका दूसरा भाग प्रकाशित हुआ था। इसकी उपलब्धियाँ तथा गुणवत्ता विवादास्पद हो सकती हैं किन्तु इसमें हिन्दी-उर्दू के कवियों का परिचय, नवीन तथ्य एवं सूचनाएँ अनुसंधानपरक दृष्टि की परिचायक है। यह एक व्यक्ति का उपाधिनिरपेक्ष निजी प्रयास है। हिन्दी अनुसंधान के विकास में यह एक महत्वपूर्ण बिन्दु है। उन्यासी वर्ष बाद एक दूसरे विदेशी विद्वान ने लंदन विश्वविद्यालय से उपाधि सापेक्ष अनुसंधानकार्य किया। वे थे जे.एन. कारपेन्टर और उनका विषय था 'थियोलॉजी आफ तुलसीदास'। इस शोधकार्य पर उन्हें 1918 ई. में शोध उपाधि प्राप्त हुई।

इस तरह अनुसंधान के दो आधार हैं, पहला वैयक्तिक प्रयास और दूसरा प्रतिष्ठानिक प्रयास।

हिन्दी अनुसंधान के विकास में राष्ट्रीय और बौद्धिक जागरण का महत्वपूर्ण योगदान है। 1828 ई. से लेकर 1885 ई. तक का कालखण्ड इस दृष्टि से विशेष महत्व का है। 1828 ई. में ब्रह्म समाज की स्थापना, 1856 ई. में विधवा विवाह के समर्थन में कानून का बनना, 1857 ई. में प्रथम स्वाधीनता संग्राम तथा आर्य समाज की स्थापना, अंग्रेजों की दमन नीति में वृद्धि के फलस्वरूप जनता में प्रतिरोध की शक्ति का विकास, 1885 में कांग्रेस की स्थापना आदि इस कालखण्ड की ऐसी घटनाएँ हैं जिनके कारण भारत के बौद्धिक समुदाय में अपनी अस्मिता के प्रति जागरुकता का संचार हुआ। संचार व्यवस्था, रेल संपर्क, छापाखाने आदि भी इसी दौर में विकसित हुए। इससे साहित्य तथा ज्ञान- विज्ञान के क्षेत्र में नई चेतना का संचार हुआ। इन घटनाओं से बंगाल का समाज सबसे ज्यादा और सबसे पहले प्रभावित हुआ जिसे हम बंगला नवजागरण के रूप में जानते हैं।

भारतेन्दु और उनके मंडल के लेखक निरंतर बंगाल के संपर्क में रहे। इन सबके परिणामस्वरूप हिन्दी भाषी क्षेत्रों के बुद्धिजीवी भी हिन्दी साहित्य की समृद्ध परंपरा के अनुसंधान की ओर प्रवृत्त हुए। इस अनुसंधान कार्य में विदेशियों ने भी पर्याप्त भूमिका निभाई। सर जार्ज ग्रियर्सन की 'माडर्न वर्नाक्युलर लिटरेचर आफ नार्दर्न हिन्दुस्तान' तथा एफ.ई.के. की 'ए हिस्ट्री आफ हिन्दी लिटरेचर' जैसी कृतियाँ इसी काल खण्ड में आईं। बाद में 'कविवचन सुधा' (1868), 'हिन्दी प्रदीप' (1877), 'ब्राह्मण' (1883) आदि पत्रिकाओं में विभिन्न नवीन विषयों पर अनुसंधानपरक लेख प्रकाशित होने लगे। स्वयं भारतेन्दु ने कालिदास, जयदेव, सूरदास तथा पुष्पदंताचार्य की चरितावली लिखी। पुरातत्व और भारत के सांस्कृतिक इतिहास पर अनुसंधानपरक निबंध लिखे। 'नाटक अथवा दृश्यकाव्य' शीर्षक उनका महत्वपूर्ण सिद्धांत निरूपक निबंध उनकी अनुसंधान-दृष्टि का सूचक है।

अनुसंधानपरक आलोचना का व्यवस्थित रूप द्विवेदी युग में सामने आया। आचार्य महावीर प्रसाद द्विवेदी कृत 'नैषधचरित चर्चा' में अनुसंधानपरक समीक्षा का उन्नत स्वरूप ढलता हुआ दिखायी देता है। 'नागरी प्रचारिणी पत्रिका'(1897 ई.) में बाबू राधाकृष्णदास का 'नागरीदास का जीवन चरित्र', बाबू श्यामसुन्दर दास का 'बीसलदेव रासों', किशोरीलाल गोस्वामी का 'अभिज्ञान शाकुन्तल' और 'पद्मपुराण', चंद्रधर शर्मा गुलेरी का 'विक्रमोर्वशी की मूल कथा' आदि अनेक गंभीर एवं गवेषणापूर्ण आलोचनात्मक निबंध सन् 1899 ई. और 1900 ई. के बीच प्रकाशित हुए।

1913 ई. में भारत के विभिन्न स्थानों में विश्वविद्यालय खोलने का प्रस्ताव पारित हुआ और देश के प्रमुख शहरों जैसे लखनऊ, आगरा, नागपुर आदि में विश्वविद्यालय खुलने लगे। यद्यपि सन् 1857 ई. में कलकत्ता विश्वविद्यालय खुल चुका था और 1918 ई.में कलकत्ता विश्वविद्यालय में हिन्दी में स्नातकोत्तर की कक्षाएँ प्रारंभ हो गई थीं, किन्तु शोध का कार्य कुछ वर्ष बाद ही आरंभ हो सका। काशी हिन्दू विश्वविद्यालय में 1921 ई. में बाबू श्यामसुन्दर दास की नियुक्ति हिन्दी के अध्ययन और विकास को प्रेरणा और प्रोत्साहन

देने के उद्देश्य से की गई और यहाँ भी एम ।ए। के पाठ्यक्रम में हिन्दी को स्थान दिया गया। इसके बाद शोधपरक समीक्षा का समुचित विकास होना संभव हुआ।

प्रतिष्ठानिक आधार पर भारत में हुए अनुसंधान-कार्य की परंपरा के विकास में 1931 ई. महत्वपूर्ण है। इसी वर्ष प्रयाग विश्वविद्यालय से बाबूराम सक्सेना को उनके 'अवधी का विकास' अनुसंधान कार्य पर डी ।लिट्। की उपाधि मिली। 1934 में काशी हिन्दू विश्वविद्यालय से पीताम्बर दत्त बड़थ्वाल को 'दि निर्गुण स्कूल आफ हिन्दी पोयट्री' पर डी ।लिट्। की उपाधि मिली जो किसी भारतीय हिंदीभाषी विद्वान के पहला अवसर था। भारत में हिन्दी भाषा पर भाषावैज्ञानिक अनुसंधान कार्य से भाषानुसंधान परंपरा का आरंभ हुआ और कुछ वर्ष के भीतर ही साहित्य के विभिन्न पक्षों पर अनुसंधान कार्य सामने आने लगे और इस तरह अनुसंधान के विषयों मे तेजी से विस्तार होने लगा। इसी अवधि में स्वैच्छिक साहित्यिक संस्थाओं की प्रकाशन योजना में, उनकी सहायता से वैयक्तिक स्तर पर हो रहे अनुसंधानकार्य भी सामने आने लगे।

अनुसंधानपरक आलोचना में अनुपलब्ध तथ्यों का अन्वेषण और उपलब्ध तथ्यों का नवीन आख्यान होता है। इसलिए यह कार्य कोई भी व्यक्ति किसी संस्था से जुड़कर आसानी से कर सकता है। किसी संस्था से जुड़े बिना अनुसंधान कार्य करना कठिन होता है। इसीलिए विश्वविद्यालयों के खुलने के बाद अनुसंधानपरक आलोचना के क्षेत्र में तेजी से विकास हुआ यद्यपि गुणवत्ता में उतनी ही तेजी से गिरावट भी आयी।

आज का हमारा समय सांस्थानिक अनुसंधान के चरम पतन का दौर है। इस दौर की शुरुआत आठवें दशक से हुई जब विश्वविद्यालय अनुदान आयोग ने महाविद्यालय व विश्वविद्यालय के शिक्षकों की अर्हता को पी-एच ।डी। की उपाधि से जोड़ दिया। पी-एच ।डी की उपाधि को नौकरियों से जोड़कर व्यवस्था ने जो भूल की उसके दुष्परिणाम कुछ दिनो बाद ही दिखायी देने लगे। आज शोधार्थी को येन केन प्रकारेण पी-एच ।डी। की उपाधि चाहिए क्योंकि बिना उसके नौकरी मिलनी कठिन है और शोध निर्देशक को भी अपने प्रमोशन में अधिक से अधिक शोध-प्रबंधों के निर्देशन का अनुभव चाहिए। इस तरह शार्टकट के इस युग में शोधार्थी और शोध- निर्देशक दोनों ने ही श्रम से पल्ला झाड़ लिया है। दोनों में जैसे गुप्त समझौता हो। कौन सिर खपाने जाय, उद्देश्य तो डिग्री हासिल करना है और उसके लिए श्रम की जरूरत कम, व्यवहार-कुशलता की जरूरत अधिक होती है।

वैश्वीकरण के बाद अनुसंधान के क्षेत्र में और भी तेजी से गिरावट आयी है। अब तो हमारे देश की पहली श्रेणी की प्रतिभाएँ मोटी रकम कमाने के चक्कर में मैनेजर, डॉक्टर और इंजीनियर बनना चाहती हैं और जल्दी से जल्दी विदेश उड़ जाना चाहती हैं। किसी ट्रेडिशनल विषय में पोस्टग्रेजुएट करके शोध करना उन्हें नहीं भाता। जो डॉक्टर या इंजीनियर नहीं बन पाते वे ही अब मजबूरी में शोध का क्षेत्र चुन रहे हैं। वैश्वीकरण और बाजारवाद ने नयी प्रतिभाओं का चरित्र ही बदल दिया है। अब "सादा जीवन उच्च विचार" का आदर्श बेवकूफी का सूचक है। ऐसे कठिन समय में त्यागपूर्ण जीवन का आदर्श चुनना आसान नहीं है। उत्कृष्ट शोध में यह आदर्श अनिवार्य है।

यद्यपि देश भर के विश्वविद्यालयों और शोध-निर्देशकों में इस विषय को लेकर भयंकर असंतोष है, पर कहीं से कोई प्रतिक्रिया देखने को नहीं मिलती। देश भर की शिक्षण संस्थाओं और शोध-केन्द्रों में साहित्य की विभिन्न विधाओं पर प्राय: सेमीनार-संगोष्ठियाँ आयोजित होती रहती हैं, किन्तु शोध जैसे अनिवार्य और महत्वपूर्ण विषय की समस्याओं पर केन्द्रित किसी संगोष्ठी के आयोजन की सूचना सुनने को बहुत कम मिलती है।

हिन्दी जगत की दशा तो यह है कि शोध के नाम पर जमा किए जाने वाले ज्यादातर प्रबंध या तो दस बीस पुस्तकों से उतारे गए उद्धरणों के असंबद्ध समूह होते हैं या निजी स्वार्थ की सिद्धि के लिए ऊँचे पदों पर आसीन आचार्यों या साहित्यकारों के गुणगान। गुणवत्ता की कसौटी पर खरा उतरने वाले प्रबंध यदा- कदा ही देखने को मिलते हैं। आखिर क्या कारण है कि शोध के लिए आधुनिक साहित्य ही आजकल शोधार्थियों और निर्देशको को अधिक आकर्षित कर रहा है? और उसमें भी जीवित और रचनाकर्म में रत रचनाकारों पर धड़ल्ले से शोध कार्य सम्पन्न हो रहे हैं। जबकि राजस्थान के जैन मन्दिरों अथवा राजस्थान के प्राच्य विद्या संस्थान की शाखाओं, नागरी प्रचारिणी सभा काशी, हिन्दी साहित्य सम्मेलन प्रयाग, नेशनल लाइब्रेरी कोलकाता, एशियाटिक सोसाइटी कोलकाता आदि में हस्तलिखित ग्रंथों का अम्बार लगा हुआ है जो अनुसंधित्सुओं की प्रतीक्षा कर रहा है। बहुभाषा भाषी इस विशाल देश की विभिन्न भाषा- भाषी जनता के बीच सांस्कृतिक व भावात्मक संबंध जोड़ने के लिए तुलनात्मक साहित्य में शोध की असीम संभावनाएँ व अपेक्षाएँ हैं। लोक साहित्य, भाषा विज्ञान, साहित्येतिहास आदि के क्षेत्र में शोध की महती आवश्यकता है। किन्तु आज तीन चौथाई से अधिक शोध- छात्र आधुनिक काल और उसमें भी कथा -साहित्य पर ही शोध रत हैं। यह चौंकाने वाली बात है कि जिस तरह साहित्य की विभिन्न विधाओं में खुलकर बहस होती है और वैचारिक संघर्ष इन विधाओं को जीवंत बनाए रखते हैं, उस तरह अनुसंधान के काम पर बहस नहीं होती। विश्वविद्यालय जहाँ शोध होते हैं अब नवोन्मेष के केन्द्र न रहकर व्यक्तिगत झगड़ों के अड्डे बन गए हैं।

शोध के गिरते स्तर का इसी से अनुमान लगाया जा सकता है कि आज अधिकांश प्रतिष्ठित विश्वविद्यालयों में बहुतेरे शोध छात्र ऐसे लेखकों पर शोधरत हैं जिनके लेखन में अभी असीम संभावनाएँ हैं। किसी भी बड़े लेखक की विचारधारा में लगातार परिवर्तन होते रहते हैं। वह जड़ नहीं होता और अध्ययन- चिन्तन- मनन के क्रम में उसकी अवधारणाओं के बदलते रहने की प्रचुर संभावनाएँ होती है। इसलिए शोध जैसा गंभीर कार्य उसी साहित्यकार पर होना चाहिए जिसका लेखन या तो पूरा हो चुका हो या पूरा होने के कगार पर हो। तात्पर्य यह कि उसमें अब किसी परिवर्तन की या नया जुड़ने की संभावना न हो क्योंकि किसी साहित्यकार पर शोध करने का अर्थ है उसके ऊपर एक थीसिस या सिद्दांत दे देना और उसपर शोध उपाधि प्राप्त कर लेना। ऐसी दशा में यदि किसी शोधार्थी ने किसी जीवित और सृजनरत रचनाकार पर शोध कार्य पूरा करके उसपर एक थीसिस

दे दिया और बाद में वह लेखक अपनी किसी नयी कृति में एक नई और पहले से भिन्न विचारधारा प्रस्तुत कर दी तो पहले का किया हुआ शोध-कार्य का क्या होगा? क्योंकि अब तो उस व्यक्ति की विचारधारा पहले वाली नहीं रही।

इतना ही नहीं, आज हिन्दी में शोध-कार्य की दशा यह है कि बिना जे.आ.एफ. (जूनियर रिसर्च फेलोशिप) के लिए शोध में पंजीकरण बहुत कठिन है। शोध के स्तर को बनाये रखने के लिये यूजीसी समय-समय पर नियमों में तरह-तरह के संशोधन करता रहता है। उन्ही में से एक यह भी है कि अब एक आचार्य स्तर का शोध-निर्देशक भी एक साथ आठ से अधिक शोधार्थियों को शोध नहीं करा सकता। इतना ही नहीं, विश्वविद्यालयों को शोध के लिए खाली हुई रिक्तियों के लिये परीक्षाएँ लेनी पड़ती हैं।। इन सबका प्रभाव यह हुआ है कि शोध के लिए जगहें बहुत कम हो गई हैं और जे.आर.एफ. पाने वालों के भी पंजीकरण अब मुश्किल से हो रहे हैं। अब हिन्दी में फल-फूल रहे इस गोरख-धंधे पर विचार कीजिए कि एक जे.आर.एफ. पाने वाला शोधार्थी पाँच वर्ष तक के लिए पंजीकृत होता है और इस अवधि में उसे लगभग 18-20 लाख रुपए शोध-वृत्ति के रूप में मिलते है और उसका शोध-निर्देशक उससे अपने किसी प्रिय या आदरणीय लेखक के व्यक्तित्व और कृतित्व पर शोध के नाम पर अभिनंदन ग्रंथ लिखवाता है और पी-एच. डी. की डिग्री भी दिलवाता है, ताकि उससे भी वह अपने बारे में प्रशस्ति या पुरस्कार आदि का जुगाड़ कर सके। शोध में तटस्थता अनिवार्य है। क्या किसी जीवित और समर्थ रचनाकार पर शोध करने वाला व्यक्ति उसकी कमियों को रेखांकित करने का साहस कर सकेगा? शोध-वृत्ति के रूप में जो 18-20 लाख रुपए शोधार्थी को मिलते हैं वह जनता की गाढ़े पसीने की कमाई का ही हिस्सा है जो सरकार के खजाने में जाता है और जिसे शोध-वृत्ति के रूप में सरकारें प्रदान करती हैं। मेरे संज्ञान में ऐसे दर्जनों पंजीकृत शोधार्थी हैं जो इस तरह से सरकार से धन लेकर अपने शोध-निर्देशकों के मित्रों-शुभचिन्तकों का जीवनवृत्त रच रहे हैं।

आज की दशा यह है कि औसत दर्जे के लेखक अपना जीवन वृत्त लिखते हुए यह उल्लेख करना नहीं भूलते कि उनकी रचनाओं पर किन-किन विश्वविद्यालयों में शोध हो चुके हैं या हो रहे हैं। अब यह भी उनकी योग्यता का एक पैमाना मान लिया गया है। क्या शोध के पतन की यह चरम परिणति नहीं है?

अंतर्राष्ट्रीय हिन्दी समिति के लिए कुछ विशिष्ट पल

1. प्रवासी भारतीयों के लिए विशेषरूप से संचालित हिन्दी पत्रिका 'गर्भनाल' के संस्थापक संपादक आत्माराम शर्मा का शोधप्रबंध 'व्यंग्य-साहित्य में रमेश जोशी का अवदान : एक अनुशीलन' बरकतुल्लाह विश्वविद्यालय, भोपाल द्वारा पीएचडी की उपाधि के लिए स्वीकृत हुआ है। उल्लेखनीय है कि रमेश जोशी 'विश्वा' के प्रधान संपादक हैं।
2. अंतर्राष्ट्रीय हिन्दी समिति के संस्थापक डॉ. कुँवर चंद्रप्रकाश सिंह के नाट्य साहित्य में योगदान पर शोध करने के लिए प्रिया कुमारी का महाराजा सयाजीराव विश्वविद्यालय, वडोदरा में पंजीकरण हुआ है। उनके शोधनिदेशक होंगे डॉ. कपलन गावरी। डॉ. सिंह के साहित्यिक अवदान पर अन्य अनेक शोधकार्य भी हुए हैं।
3. इसके साथ ही, नासिक की सविता कोल्हे, सावित्रीबाई फुले पुणे विश्वविद्यालय की शोधार्थी हैं जो भारत की चार और भारत से बाहर से निकलने वाली तीन इस प्रकार कुल सात पत्रिकाओं के 2017 से 2022 तक के अंकों की सामग्री के आधार पर प्रवासी साहित्य पर शोध करेंगी। यह पुनः समिति के मुखपत्र विश्वा की प्रासंगिकता को रेखांकित करता है।
4. सुश्री लीना कुमारी का डॉ. अवधेश कुमार मेहता, संत कोलम्बा महाविद्यालय के निर्देशन में विनोबा भावे विश्वविद्यालय, हजारीबाग में 'रमेश जोशी की रचनाओं में व्यंग्य बोध' विषय पर पीएचडी उपाधि के लिए शोध करने हेतु पंजीकरण हुआ है।

जयपाल सिंह की दो कविताएँ

1. सर्दी आ गई है

सर्दी आ गई है
कहा एक बूढ़े आदमी ने अपने आप से

एक हवा का झोंका आया
बच्चे ने फटाक से खिड़की बंद कर दी

उधर दादी अम्मा ने दो-तीन बार संदूक खोला है
उसे फिर बंद कर दिया है

नौकर रामदीन इस हफ्ते कुछ ज़्यादा जी खाँस गया है
उसने दवा की कुछ खाली शीशियाँ सहेज कर रख ली हैं

दुकान के बाहर रखी रज़ाइयों को मुड़ मुड़ कर देखते हुए
दो मज़दूर आपस में टकरा गए

2. जिंदगी का सूरज

खिलखिलाते खेलते बच्चे
हवा, धूप, छांव, रिमझिम-फुहार, बारिश के साथ

दाना दाना होते पिता
गेहूं, धान, मकई ज्वार, बाजरा, सरसों के साथ

पानी पानी होती माँएँ
कुएँ, बावड़ी, तालाब, नदी-नहरों के साथ

सपने सजाती लड़कियाँ
किताबों, कापियों, चिड़ियों, घोंसलों, पेड़ों और हवाओं के साथ

धरती पर उग रहा है ज़िंदगी का सूरज

फ्रांज़ काफ्का के उपन्यास 'द ट्रायल' का सारांश

अपने तीसवें जन्मदिन की सुबह, दो पुलिसकर्मी जोसेफ के. के. गेस्ट हाउस में आते हैं और उन्हें सूचित करते हैं कि उन्हें गिरफ्तार किया जा रहा है। जोसेफ, जो एक सफल बैंक प्रमुख क्लर्क हैं, को उनके अपराध के बारे में सूचित नहीं किया जाता है। एक उलझी हुई पूछताछ के बाद, उन्हें हमेशा की तरह काम पर जाने के लिए कहा जाता है। उसी रात देर से, वह एक अन्य गेस्ट हाउस में रहने वाली फ्रॉइलिन बर्स्टनर के कमरे में जाते हैं, जहाँ वे अचानक उन्हें चूम लेते हैं।

जोसेफ को उसकी पहली सुनवाई की तारीख दी जाती है। वह एक गरीब झुग्गी बस्ती में स्थित अपने न्यायालय कक्ष में जाता है। सुनवाई में, वह एक विशाल जनसमूह के सामने खड़ा होता है और कानूनी व्यवस्था की जमकर आलोचना करता है। जोसेफ के जाने से पहले, न्यायाधीश उसे सूचित करते हैं कि उसके इस आचरण के कारण उसे उन लाभों से वंचित कर दिया जाएगा जो आमतौर पर ऐसी सुनवाईयों के दौरान मिलते हैं।

अगले हफ्ते, जोसेफ को अगली सुनवाई की सूचना नहीं मिलती, लेकिन वह फिर भी अदालत पहुँच जाता है। वहाँ उसे एक युवा एयर होस्टेस के अलावा कोई नहीं मिलता, जो उससे तब तक छेड़छाड़ करती है जब तक कि एक कानून का छात्र उसे जज से मिलवाने के लिए नहीं ले जाता। कुछ देर बाद, उसका पति, जो अदालत का कर्मचारी है, वहाँ पहुँचता है। वह जोसेफ को कानूनी दफ्तरों का दौरा करवाता है। दफ्तरों की घुटन भरी हवा से जोसेफ इतना परेशान हो जाता है कि वह इतना बेहोश हो जाता है कि उसे खुली हवा में ले जाना पड़ता है।

जोसेफ बार-बार फ्रॉइलिन बर्स्टनर से संपर्क करने की कोशिश करता है, लेकिन वह उसे अनसुना कर देती है। कुछ दिनों बाद, जब जोसेफ शाम को काम से निकलने की तैयारी कर रहा होता है, तो उसे कराहने की आवाज़ें सुनाई देती हैं। वह एक सामान रखने का कमरा खोलता है और देखता है कि उसे गिरफ्तार करने वाले पुलिसकर्मियों को बेरहमी से कोड़े मारे जा रहे हैं। वे दावा करते हैं कि उन्हें इसलिए सज़ा दी जा रही है क्योंकि जोसेफ ने उनकी हरकतों की सबके सामने निंदा की थी। जोसेफ बहुत परेशान हो जाता है, लेकिन किसी सहकर्मी की नज़र से बचने के लिए दरवाज़ा बंद करके चला जाता है।

जोसेफ के चाचा कार्ल उससे मिलने उसके काम पर आते हैं। कार्ल को जोसेफ के मुकदमे की खबर मिल चुकी है और वह चिंतित हैं। वह जोसेफ को अपने एक मित्र, वकील हुल्ड से मिलवाने ले जाते हैं। हुल्ड के घर पर उनकी मुलाकात वकील से होती है, जो बीमार और बिस्तर पर पड़े हैं। संयोगवश, एक उच्च पदस्थ दरबारी अधिकारी भी वहाँ मौजूद होता है, लेकिन वह जोसेफ को नज़रअंदाज़ कर देता है, और जोसेफ हुल्ड की नौकरानी लेनी के साथ छेड़छाड़ करने के लिए कमरे से बाहर चला जाता है। बाद में, कार्ल जोसेफ से कहते हैं कि उसकी अनुचित अनुपस्थिति ने उसके मामले को नुकसान पहुँचाया है।

काम पर, जोसेफ अपने मुकदमे के बारे में ही सोचता रहता है और महत्वपूर्ण ग्राहकों की उपेक्षा करता है। आखिरकार, वह एक ग्राहक से मिलता है, लेकिन इतना खोया हुआ कि जोसेफ का प्रतिद्वंद्वी, बैंक का उप निदेशक, उस मामले को अपने हाथ में ले लेता है–जोसे जोसेफ की करियर संबंधी महत्वाकांक्षाओं को एक बड़ा झटका लगता है। ग्राहक, जोसेफ के मुकदमे के बारे में सुनकर, उसे टिटोरेली नामक एक दरबारी चित्रकार से मिलने की सलाह देता है। जोसेफ चित्रकार का पता लेकर काम से छुट्टी ले लेता है, और अपने प्रतिद्वंद्वी को अपने अन्य ग्राहकों को भी संभालने देता है। जोसेफ को टिटोरेली का अपार्टमेंट जर्जर इमारतों के एक समूह में मिलता है। चित्रकार जोसेफ की मदद करने की पेशकश करता है और उसे बताता है कि उसे किस प्रकार की बरी होने की संभावना है। टिटोरेली की व्याख्या से पता चलता है कि किसी भी आरोपी को कभी भी सार्थक बरी नहीं किया जाता; मुकदमे या तो अनिश्चित काल तक चलते रहते हैं या दोषसिद्धि में समाप्त होते हैं।

अपनी प्रगति न होने से परेशान होकर जोसेफ अपने वकील को बर्खास्त करने का फैसला करता है। वह हुल्ड के पास जाता है, जहाँ उसकी मुलाकात वकील के एक और मुवक्किल, ब्लॉक नाम के एक व्यापारी से होती है। ब्लॉक अपने कानूनी मामलों को लेकर बेहद चिंतित है, जो पाँच साल से चल रहे हैं। जब जोसेफ ब्लॉक और लेनी को बताता है कि वह हुल्ड को बर्खास्त करने की योजना बना रहा है, तो वे उसे रोकने की कोशिश करते हैं, लेकिन वह हुल्ड के कार्यालय पहुँच जाता है। हुल्ड आश्चर्यजनक रूप से ज़ोर देकर जोसेफ को मनाने की कोशिश करता है, लेकिन जोसेफ टस से मस नहीं होता। उनकी मुलाकात के अंत में, हुल्ड ब्लॉक को बुलाता है, जो वकील के बिस्तर के पास गिड़गिड़ाता है। पता चलता है कि बेचारा व्यापारी अक्सर वकील से मिलने की उम्मीद में हुल्ड के घर पर सोता है।

जोसेफ बैंक के एक महत्वपूर्ण इतालवी ग्राहक को स्थानीय गिरजाघर का भ्रमण कराने के लिए सहमत हो जाता है। हालांकि, वह इतालवी ग्राहक नहीं आता। इसके बजाय, एक पादरी मंच पर चढ़कर जोसेफ को नाम से पुकारता है। पादरी बताता है कि वह जेल का पादरी है और उसने जोसेफ को उसके मुकदमे के बारे में बोलने के लिए गिरजाघर में बुलाया था। पादरी जोसेफ को कानून के मार्ग की रक्षा करने वाले कई द्वारपालों के बारे में एक रहस्यमय दृष्टांत सुनाता है, जिसका उद्देश्य कानून का वर्णन करना है।

जोसेफ के इकत्तीसवें जन्मदिन की पूर्व संध्या पर–उसकी गिरफ्तारी के एक साल बाद–दो आदमी उसके कमरे में आते हैं। वे उसे शहर के बाहरी इलाके में स्थित एक पत्थर की खदान में ले जाते हैं, जहाँ वे उसके दिल में चाकू घोंप देते हैं। अपनी मृत्यु से शर्मिंदा जोसेफ अंतिम शब्द कहता है, "कुत्ते की तरह!"

राधामोहन गोकुल

कृष्णप्रताप सिंह
(वरिष्ठ पत्रकार)

इसे विडंबना ही कहेंगे कि आज इस देश में बढ़ते पाखंड व पोंगापंथ के दौर में, जब हिंदी नवजागरण के विलक्षण नायक स्मृतिशेष राधामोहन गोकुल (15 दिसंबर, 1865-03 सितम्बर, 1935) के हर तरह के पाखंड व पोंगापथ का प्रतिकार करने वाले विचार उनके दौर से भी ज्यादा जरूरी हो चले हैं, खुद को प्रगतिशील व परिवर्तनकामी कहने वाली जमातें भी उनकी बहुत चर्चा नहीं करतीं।

उनके लेखन तो लेखन, स्वतंत्रता संघर्ष में उनकी क्रांतिकारी भागीदारी को भी भुला दिया गया है। इसको भी कि फारसी, हिंदी, अंग्रेजी व बही-खाते की पढ़ाई-लिखाई के कुछ ही दिनों बाद, जब उन्हें अपने जिले इलाहाबाद में ही महालेखाकार कार्यालय में सुभीते की सरकारी नौकरी मिल गई थी, एक क्रूर अंग्रेज अफसर द्वारा किए गए अपमान ने उनके जीवन की दिशा बदल डाली।

इस अफसर को लगता था कि बीस रुपये के (उन दिनों बेहद आकर्षक माने जाने वाले) मासिक वेतन के बदले वे अपने साथ उसके कितने भी खराब सलूक को बर्दाश्त करते रहेंगे। लेकिन नौ महीने भी नहीं बीते थे कि उनकी सहनशक्ति जवाब दे गई और एक दिन उन्होंने उस अफसर की रूल से जमकर पिटाई के बाद प्रतिज्ञा कर डाली कि कुछ भी हो जाए, अंग्रेजों की चाकरी नहीं करेंगे। साथ ही उन्हें देश से निकालने के क्रांतिकारी संघर्ष में कुछ भी उठा नहीं रखेगे। अनंतर, इस प्रतिज्ञा के पक्के पालन के लिए उन्होंने अपने सभी शैक्षणिक प्रमाण-पत्र जला डाले थे।

दोजख सही पै...

इस सिलसिले में जानना जरूरी है कि अपने स्वाभिमान और आत्मसम्मान को लेकर वे बहुत सजग रहते थे और किसी उर्दू शायर की निम्नलिखित काव्य पंक्तियाँ उनका कंठहार थीं– सिजदे से गर बहिश्त मिले दूर कीजिए, दोजख सही पै सर का झुकाना नहीं अच्छा।

आगे चलकर उन्होंने कर्म व विचार की एकता पर जोर देते हुए अनेकानेक संकीर्णताओं का अतिक्रमण कर वैज्ञानिक विचार व चेतना की ऐसी परंपरा डाली, जो और तो और, अपने आड़े आने वाली धर्म व ईश्वर की सत्ता को भी खुली चुनौती देती और मानती थी कि देश के पुराने भौतिकवादी चिंतन की जिस जुझारू व गौरवशाली परंपरा को साजिशन भुला दिया गया है, उसे इसी तरह आगे बढ़ाया जा सकता है।

ऐसे में स्वाभाविक ही था कि उन्हें अपने समय में ही राष्ट्रीय जागरण का अनन्य शलाका पुरुष माना जाने लगे। लेखक व संपादक किशन कालजयी की मानें, तो गोकुल हिंदी नवजागरण के ऐसे तेजस्वी नायक हैं, जिनका लेखन दबी-कुचली जनता की मुक्ति कामना व संघर्षों का जीवित साक्ष्य है। वे बताते हैं कि गोकुल को बेचैन किए रखने वाली देशभक्ति ने उन्हें उनके समय में ही बुनियादी उलटफेर के जज्बे से भरे जिद्दी योद्धा में बदल दिया था।

दूसरी ओर, प्रेमचंद के अनुसार, उनके विचारों में मौलिकता तो थी ही, गहरा अन्वेषण और हर किसी को कायल कर देने वाली सच्चाई भी थी। इसलिए किसी के लिए भी उनके तर्कों के सामने सिर न झुकाना कठिन था और लगता था कि उनके रूप में महात्मा चार्वाक ने ही फिर से अवतार लिया है।

यों, यह भी एक विडंबना ही है कि उन्हें ईश्वर को कल्पित पदार्थ मानकर उसका बहिष्कार करने वाले गोकुल में चार्वाक का अवतार दिखाई दे रहा था। हालांकि, अपने इस मूल्यांकन में वे पूरी तरह सही थे कि गोकुल ने धार्मिक, सामाजिक व नैतिक विषयों पर न सिर्फ स्वतंत्र विचार किया बल्कि निडर होकर उन विचारों का अनुपालन भी किया। वे जात-पांत, छूतछात, धर्म, सम्प्रदाय व स्त्री-पुरुष गैरबराबरी सभी को समाज के लिए घातक व उसकी स्वाभाविक प्रगति में बाधक समझते थे।

आजीवन बालविधुर

प्रसंगवश, गोकुल का जन्म 15 दिसंबर, 1865 को उत्तर प्रदेश में इलाहाबाद के पास स्थित भदरी रियासत के लाल गोपालगंज गाँव के एक धर्मभीरु परिवार में हुआ था। उनके पूर्वज तत्कालीन जयपुर राज्य के खेतड़ी से चलकर वहाँ आए थे। परिवार में चली आती परंपरा के अनुसार 13 वर्ष की उम्र में ही राधामोहन की शादी कर दी गई थी और इस बाल विवाह का कुफल उन्होंने इस रूप में भोगा कि 1883 में उनके 18 वर्ष के होते-होते उनकी पत्नी का निधन हो गया और उन्होंने नया विवाह रचाने के बजाय आजीवन विधुर रहने का संकल्प ले लिया।

1880 के आसपास बहुत छोटी उम्र में ही वे हिंदी 'प्रदीप' के संपादक बालकृष्ण भट्ट और भारतेंदु मंडल के दूसरे सदस्य प्रतापनारायण मिश्र के संपर्क में आ गए और जाति प्रथा व कूपमंडूकता पर चोट करने वाले लेखन में प्रवृत्त हो गए थे। औपनिवेशिक दासता के विरुद्ध तो उन्होंने जीवन भर संघर्ष किया। लेखन व पत्रकारिता इस

संघर्ष में उनके दो बड़े हथियार बने। अलबत्ता, राजनीतिक सक्रियता का हथियार भी वे आजमाते ही रहते थे। उनका मानना था कि भारतवासियों की रूढ़ियों व अन्धविश्वासों में फसन्त, अज्ञान और मानसिक दासता सब अंग्रेजों की औपनिवेशिक गुलामी के चलते ही है।

उन्होंने अपने समय की प्रायः सभी पत्रिकाओं में भरपूर लेखन किया। सूर्यकांत त्रिपाठी 'निराला' (जो उन्हें गुरुतुल्य मानते थे) के पत्र 'मतवाला' में उनके लेख 'प्रत्यक्षवादी' छद्मनाम से भी छपते थे। उन्होंने 'ब्राह्मण', 'समाजसेवक' और 'प्रणवीर' नामक ऐतिहासिक दायित्व निभाने वाली पत्रिकाओं का संपादन भी किया था।

रूढ़ियों के विरोध की अपनी यात्रा में उन्होंने आर्यसमाज में सक्रियता तक पहुँचकर भी दम नहीं लिया था। 1920 तक वे कट्टर निरीश्वरवादी, जुझारू भौतिकवादी और उत्कट जनवादी व्यक्तित्व के तौर पर सामने आ चुके थे। राजनीतिक सक्रियताओं के क्रम में कांग्रेसी राजनीति के सीमान्तों का अतिक्रमण करते हुए वे क्रांतिकारी बने और साम्यवाद के प्रचार व कम्युनिस्ट पार्टी के गठन में भी भूमिका निभाई।

समाजवाद के सारथी

सत्यभक्त (जिन्हें डॉ. रामविलास शर्मा भारत में कम्युनिस्ट पार्टी का संस्थापक होने का श्रेय दे गए हैं) की ही तरह गोकुल की भी मान्यता थी कि भारत के समय व समाज को बदलने में सबसे कारगर साम्यवाद की राह ही है। इसलिए वे अपने विचारों, भावों व कार्यों से भारतीय परंपराओं की आधुनिक, प्रगतिशील व तार्किक व्याख्या, जड़ परंपराओं को तोड़कर नई परंपराओं के निर्माण व भारतीय परिवेश में साम्यवाद के अपेक्षित स्वरूप की तलाश के सत्यभक्त के प्रयत्नों में लगातार उनके साथ रहे। कहते हैं कि सत्यभक्त के चिंतन पर साप्ताहिक 'सत्य सनातन धर्म' में व्यक्त गोकुल के विचारों का गहरा असर था। गोकुल अरसे तक इस पत्र से जुड़े रहे थे।

उनकी सबसे बड़ी विशेषता यह थी कि वे भारतीय चिंतन परंपरा की प्रतिगामी धारा को पूरी तरह खारिज करते हुए भी उसकी प्रगतिशील धारा की विरासत को आत्मसात करने में हिचकिचाते नहीं थे। उनका कहना था कि इस विरासत को पाश्चात्य चिंतन के क्रांतिकारी, जनवादी, वैज्ञानिक और प्रगतिशील मूल्यों से जोड़कर भारतवासी अपने भविष्य का रास्ता हमवार कर सकते हैं। अपने इन विचारों के लिए उन्होंने कई बार बड़ी-बड़ी कीमतें चुकाईं, जेल गए और नाना यंत्रणाएँ व त्रासदियाँ भोगीं।

कई विद्वानों का मानना है कि उन्होंने नास्तिकता व तार्किकता की जिस अग्निधर्मी परंपरा का प्रवर्तन किया, उसे उनके बाद महापंडित राहुल सांकृत्यायन ने आगे बढ़ाया।

इन विद्वानों के अनुसार गोकुल इस देश में समाजवाद के प्रचारकों की पहली पीढ़ी की रीढ़ थे, तो भगत सिंह व शिव वर्मा समेत हिंदुस्तान सोशलिस्ट रिपब्लिकन एसोसिएशन/आर्मी से जुड़े कई क्रांतिकारियों को वैज्ञानिक समाजवाद के विचारों तक पहुँचाने में भी उनकी अहम भूमिका थी। रासबिहारी बोस, शचीन्द्रनाथ सान्याल, चन्द्रशेखर आजाद, श्यामसुन्दर दास, गणेश शंकर विद्यार्थी, महावीर प्रसाद सेठ, मुंशी नवजादिकलाल श्रीवास्तव, शिवपूजन सहाय, किशोरीदास बाजपेयी और निराला से उनका निकट संपर्क पूरे जीवन बना रहा, जबकि प्रेमचंद से उनकी गहरी आत्मीयता थी।

यहाँ यह भी उल्लेखनीय है कि विचारों के स्तर पर उन्हें इस संसार में प्रकृति ही सबसे श्रेष्ठ और सुपाठ्य लगती थी और उनका मानना था कि उसके विरुद्ध जितने भी नियम हैं, वे सब तिरस्कार के साथ ठुकरा देने योग्य हैं। वे कहते थे कि मनुष्य सोच-समझकर अपने समाज का संगठन करे तो ईश्वर, राजा और कानून के बिना भी आनन्द के साथ रह सकता है।

अंतिम सांस तक सक्रिय

1935 में बुंदेलखंड के उत्तर प्रदेश स्थित हमीरपुर जिले के सुदूर खोही गाँव में अंतिम सांस लेने से पहले उन्होंने वहाँ अपने कई वर्ष क्रांतिकारी जनजागरण करते हुए गुजारे थे। वहाँ जिस विद्यालय से जुड़कर वे नवयुवकों, साथ ही मजदूरों को क्रांति कर्म की ओर प्रेरित करते और बम व अस्त्र-शस्त्र चलाने का प्रशिक्षण देते थे, हमीरपुर के तत्कालीन कलेक्टर ने उसको बंद तो करा ही दिया था, उनकी वृद्धावस्था के बावजूद उनको तलब कर धमकाया भी था। लेकिन वे न डरे थे, न ही रुके।

इस अद्भुत स्कूल की स्थापना का सिलसिला कानपुर में 1930 में हुई उनकी गिरफ्तारी से जुड़ा हुआ है। कानपुर की जेल में दो साल की कैद की सजा काटते वक्त वे हमीरपुर जिले के स्वतंत्रता सेनानी स्वामी ब्रह्मानंद के संपर्क में आए तो स्वामी ने उनसे कहा कि वे अपने क्षेत्र में एक स्कूल खोलेंगे बशर्ते वे चलकर उसके छात्रों को अंग्रेजी पढ़ाएँ। गोकुल मना नहीं कर पाए तो उनकी रिहाई के बाद स्वामी ने हमीरपुर के राठ क्षेत्र के इटौरा गाँव में एक जमीनदार द्वारा दी गई जमीन पर स्कूल खुलवाया, जो बाद में खोही गाँव में स्थानांतरित कर दिया गया। इस स्कूल की एक खास बात यह थी कि न इसमें किसी छात्र से कोई फीस ली जाती थी, न ही किसी शिक्षक को कोई वेतन मिलता था।

लेकिन कानपुर में गोकुल को मिली दो साल की सजा उन्हें मिली इकलौती सजा नहीं थी। उससे पहले 1914 में जर्मनी में हथियारों से भरे बक्से को लूटने में उनको राजद्रोह का मुकदमा चलाकर एक साल की कैद की सजा दी गई थी। 1923 में आगरा में मुकदमा चलाकर भी उन्हें सजा दी गई थी। ऐतिहासिक काकोरी ट्रेन ऐक्शन में 1927 में रामप्रसाद बिस्मिल, अशफाक उल्ला खां, रौशन सिंह व राजेंद्र लाहिड़ी की शहादतों के बाद क्रांतिकारी नवयुवकों को फिर से संगठित करने में भी गोकुल ने बड़ी भूमिका भूमिका निभाई थी।

इससे पहले उन्होंने अपने फतेह बहादुर नामक मित्र को डेढ़-डेढ़ सौ रुपये में राजस्थान से दो विदेशी पिस्तौलें खरिदवाई थीं। इनमें एक पिस्तौल, मणिनाथ बनर्जी ने इलाहाबाद में सीआईडी के एसपी पर गोली चलाने में इस्तेमाल की थी, जबकि दूसरी पिस्तौल भगत सिंह ने सांडर्स की हत्या के ऑपरेशन में इस्तेमाल की थी।

हिन्दी-उर्दू विवाद का सच

सुधांशु वाजपेयी

हिंदी और उर्दू दो भाषा नहीं एक ही भाषा थी जिसे हिंदोस्तानी कहा जाता था। जिस तरह आज खुशी-खुशी अंग्रेजी बांचने को गर्वितदृष्टि से देखते हैं, जबकि कट्टरपंथी तर्क से वह तो हमारी ग़ुलामी की निशानी है, लेकिन चूंकि वह इस देश के शासकवर्ग/एलीट क्लास की भाषा है, इसलिए उस भाषा में बोलकर उन्हें/हमें भी शासकवर्ग/अभिजन होने का गर्वित आनंद मिलता है।

अंग्रेजों की भाषा अंग्रेजी थी, जैसे उनकी भाषा में बोलकर हम गर्व महसूस करते रहे हैं, उसी तरह मुगलिया सल्तनत की भाषा फारसी थी, तब भी हम उनकी भाषा में बोलकर गर्व महसूस करते थे, लेकिन जैसे आज भी अधिकांश आम जनता समय और सुविधाओं के अभाव में फटाफट अंग्रेजी सीखकर अंग्रेज नहीं बन सकती, वैसे ही तब भी फारसी सीखना आज से अधिक ही दुरूह रहा होगा।

तब जिस तरह हम आज (अंग्रेजों के समय से ही) अपनी भाषा में अंग्रेजी के कुछ शब्द मिलाकर अंग्रेजी के जानकार होने या अभिजन होने वाले अनुभूति ले लेते हैं, फिर धीरे-धीरे बहुत से शब्द जनता में और नीचे पहुँचते-पहुँचते इतने घिस-पिट जाते हैं कि पता ही नहीं चलता यह कब और कैसे हमारी भाषा में फिट हो गया जैसे इस 'फिट' शब्द को ही ले लो, जो अस्वाभाविक नहीं लगा होगा, जबकि इसका हिंदी 'उपयुक्त' अधिक शुद्धतावादी हो जाता।

ख़ैर तो इसी तरह दिल्ली और मेरठ के आस-पास बोली जाने वाली खड़ी बोली में दरबारियों/हाकिमों/व्यापारियों की देखा-देखी फारसी के शब्द जब मिलते गए तो एक नई ही ज़बान (भाषा) बन गई जिसे विदेशियों ने 'ज़बान ए हिंद या हिंदोस्तानी' कहा, फारसी जानने वालों ने इसे 'रेख्ता' यानी गिरी हुई (भाषा) कहा।

उर्दू का मूलतः तुर्की भाषा का शब्द है जिसका अर्थ है शाही शिविर या खेमा जिससे अनुमान यह लगाया जाता है कि जो सैनिक भर्ती होते थे या जो शाही दरबारों में आने वाले व्यापारी होते थे वो इस जनभाषा में बात करते थे सो इसे उर्दू कह दिया गया। हिंदी/उर्दू को विदेशी ख़ासकर विदेशी मुस्लिमों (अरबी-फारसी विद्वानों) ने ज़बान-ए-हिंद या ज़बान ए हिंदी कहा, क्योंकि उर्दू कहीं विदेश में नहीं हिंदोस्तान में जन्मी, विकसित हुई। ज़बान ए हिंद से हिंदुई/हिंदोस्तानी और फिर हिंदी कहीं जाने लगी।

सिंधु' शब्द का प्रथम प्रयोग ऋग्वेद में सामान्य रूप से नदी और उसके आस-पास के प्रदेश के लिए हुआ है जबकि हिंदू या हिंदी शब्द का वहाँ कोई वर्णन नहीं।

माना यह जाता है कि 500 ई. पू. के आस-पास दारा प्रथम के काल में सिंधु प्रदेश का अधिपत्य ईरानियों के हाथ में था, सो संस्कृत के सिंधु का ईरानी में हिंदु हो गया। सिंधु नहीं के इस पार के लोग हिंदु और उनकी भाषा हिंदुई या हिंदोस्तानी हो गई। सबसे पहले हिंदी शब्द का प्रयोग कलीला-दिमना में पाया गया। ईरान के बादशाह नौशेरवां (531-579 ई.) के हाकिम बजरोया ने पंचतंत्र की कहानियों का फ़ारसी अनुवाद कलीला-दिमना नाम से किया जिसकी भूमिका में नौशेरवां के मंत्री बुजुर्च मिहिर ने कहा कि यह अनुवाद ज़बाने-हिंदी से किया गया है।

तैमूरलंग के पोते शरफुद्दीन यज्दी ने भी सन् 1424 ई में अपने ग्रंथ जफरनामा में भारतीय भाषा के अर्थ में हिंदी शब्द का प्रयोग किया।

डॉ. धीरेंद्र वर्मा द्वारा संपादित हिंदी साहित्य कोश (भाग-1) में 13-14 वीं शती में देशीभाषा को 'हिंदी या हिंदकी या हिंदुई' नाम देने वाले अबुल फ़ज़ल हसन या अमीर खुसरो का नाम सबसे अधिक महत्वपूर्ण है। डॉ. भोलानाथ तिवारी लिखते हैं कि खुसरो ने 'हिंदवी' शब्द का प्रयोग मध्यदेशीय भाषा के रूप में किया, हिंदवी शब्द मूलतः हिंदुवी या हिंदुई है जो घिस-पिटकर जनभाषा में हिंदी हो गया। इसीलिए यह संयोग नहीं स्वाभाविक है कि खड़ी बोली हिंदी के प्रथम कवि खुसरो ही हैं।

कालांतर में जब धार्मिक आग्रह बढ़े तो मौलानाओं ने देशीभाषा में फारसी के ज़्यादा शब्दों और पंडितों ने संस्कृत के शब्दों का बहुतायत से प्रयोग करना शुरू कर दिया हिंदी और उर्दू के समर्थक क्रमशः देवनागरी और फ़ारसी लिपि में लिखित हिंदुस्तानी का पक्ष लेने लगे थे। जबकि कर्ता,क्रिया और कर्म यही रहा, जो आज भी है। इसीलिए हिंदी साहित्य के इतिहास लेखन पर पहली किताब का नाम 'इस्त्वार द ला लितरेत्युर ऐन्दुई ऐन्दुस्तानी' (हिंदू और हिंदुस्तानी साहित्य का इतिहास) है।

जब अंग्रेज आए और उन्होंने सांप्रदायिक विभाजन की नींव डाली तो भाषा को भी उस विभाजन का टूल हथियार बनाया गया। ग्रियर्सन ने पहली बार लिखित रूप से 'द मॉडर्न वर्नाक्यूलर लिट्रेचर ऑफ हिंदुस्तान' में संस्कृत-प्राकृत शब्द बहुल भाषा को हिंदी और अरबी-फारसी मिश्रित भाषा को उर्दू कहा। हिंदी और उर्दू का झगड़ा दरअसल अपने मूलतः नागरी और फारसी लिपि का झगड़ा था।

सन् 1837 में, ब्रितानी ईस्ट इंडिया कंपनी ने विभिन्न प्रांतों में फ़ारसी भाषा के स्थान वहाँ की देशी से आधिकारिक (राजभाषा) और न्यायालयी भाषा के रूप में मान्यता प्रदानी की। लेकिन भारतीय उपमहाद्वीप के उत्तरी क्षेत्रों में फ़ारसी भाषा को प्रतिस्थापित करने के लिए देवनागरी में के स्थान पर फ़ारसी लिपि में राजभाषा और न्याय भाषा के रूप में लागू किया। इससे समस्या यह आई कि हिंदू विद्यार्थियों को फ़ारसी लिपि अलग से सीखने में कठिनाई होती जबकि मुस्लिम विद्यार्थियों के लिए धार्मिक/पारिवारिक संस्कारवश

शुरू से यह लिपि सीखी हुई होती।

इस प्रकार शिक्षा में नागरी लिपि में सहज हिंदुओं में असंतोष होना बिल्कुल स्वाभाविक-सी बात थी और इसके खिलाफ सरकारी क्षेत्रों में नागरी लिपि को लागू करने की मांग भी सहज-स्वाभाविक और लोकतांत्रिक थी।

इस मांग को सबसे पहले 1868 ई. में राजा शिवप्रसाद 'सितारेहिंद' ने उठाया। उत्तर भारत में यह विवाद बढ़ता ही गया, फलस्वरूप सरकार को झुकना पड़ा और सन् 1900 में, सरकार ने हिंदी और उर्दू दोनों को सरकारी नौकरियों और न्यायालय में समान दर्जा प्रदान किया जिसका मुस्लिमों ने विरोध किया और हिंदुओं ने खुशी व्यक्त की।

1920 के दशक में इसी हिंदी-उर्दू विवाद से त्रस्त होकर गांधीजी ने दोनों भाषाओं को पुनः 'हिंदुस्तानी' कहने और सुविधानुसार नागरी-फारसी दोनों लिपियों में लिखने की सलाह दी। यद्यपि वो हिंदुस्तानी बैनर तले हिंदी और उर्दू को लाने के स्वयं के प्रयास में असफल रहे परंतु इसे अहिंदी भाषी क्षेत्रों में हिंदुस्तानी के रूप में ही देशीभाषा को लोकप्रिय कर दिया।

अंग्रेज़ों का उद्देश्य सफल हो रहा था, हिंदू-मुस्लिम अलगाववाद के सांप्रदायिक माहौल में हिंदी और उर्दू के नाम पर तलवारें खींची जा रही थीं। हिंदी को हिंदुओं की भाषा और उर्दू को मुसलमानों की भाषा इतनी बार और इतने तरीकों से बताया गया कि इतना बड़ा झूठ उस दौर का सबसे बड़ा सच बना दिया गया। हिंदी और उर्दू के बीच के विरोध को इतना बढ़ा दिया गया कि मूल रूप से एक भाषा होने के बावजूद दोनों अलग-अलग भाषाएँ बन गईं। उर्दू को फारसी शब्दों से और हिंदी को संस्कृत शब्दों से इस तरह बोझिल बनाया जाने लगा कि सामान्य आदमी को न उर्दू समझ में आ सकती थी और न हिंदी।

अंततः अंग्रेजों का उद्देश्य सफल रहा। हिंदोस्तान आज़ाद भी हुआ तो दो टुकड़े होकर। हिंदू बहुल हिंदुस्तान की राजभाषा हिंदी बनी और मुस्लिम बहुल पाकिस्तान की राजभाषा उर्दू बनी। आज भी जो लोग हिंदी-उर्दू विवाद को बढ़ाने में लगे हैं वो अंग्रेजों की सांप्रदायिक विरासत 'फूट डालो और राज करो' को ही आगे बढ़ा रहे हैं।

स्वाभाविक ही मुल्क तकसीम कर दिया गया, लिपि विभाजित कर दी गई लेकिन हिंदोस्तानी आत्मा दोनों जगह धड़कती है इसीलिए हिंदी फ़िल्में/कवि पाकिस्तान में और पाकिस्तानी सीरियल/शाइर हिंदोस्तान में मक़बूल होते हैं। मैं यक़ीन के साथ कह सकता हूँ कि यदि कभी हिंदोस्तान-पाकिस्तान एक होंगे तो उसकी जड़ में हिंदोस्तानी होगी, जो विभाजित होकर भी विभाजित न हो सकी। ●

विचार :

सवाल से भागने का सवाल

धर्मेन्द्र आज़ाद

अधिकतर धार्मिक लोग धर्मग्रंथों को समझने के लिए नहीं, बल्कि श्रद्धा में झुककर केवल जाप करने के लिए पढ़ते हैं–क्योंकि उन्हें बचपन से यह सिखाया जाता है कि धार्मिक पुस्तकों पर सवाल करना पाप है।

लेकिन क्या बिना प्रश्न किए, या बिना बुद्धि-विवेक का इस्तेमाल किए, कोई समझ वास्तव में बन पाती है?

क्या बिना तर्क के कोई विश्वास सच में मज़बूत हो सकता है?

अगर विचार–चाहे वह धर्म का हो या विज्ञान का– तभी समझ में आता है जब उस पर प्रश्न किए जाएँ, जब उसे विवेक और तर्क की रोशनी में परखा जाए।

जब धर्मग्रंथों को उनके रचे जाने के समय, उस दौर की सामाजिक परिस्थितियों और तत्कालीन बौद्धिक समझ के संदर्भ में पढ़ा जाता है, तो कई परतें अपने-आप खुलने लगती हैं।

तब समझ में आता है कि अनेक बातें उस समय की सोच पर आधारित थीं– जो आज अप्रासंगिक या भेदभावपूर्ण लगती हैं।

आज के समय में एक छोटा बच्चा भी बता सकता है कि उनमें दर्ज कई कथाएँ काल्पनिक हैं, जो उस समय रहस्यमय और मायावी प्रतीत होती होंगी, लेकिन आज के वैज्ञानिक युग में तर्क की कसौटी पर वे हास्यास्पद लगने लगती हैं।

और कुछ मान्यताएँ ऐसी भी हैं जिनके पीछे न तर्क है, न प्रमाण– केवल अंधविश्वास और पाखंड।

यह बात किसी एक धर्म तक सीमित नहीं है। यह सभी पारंपरिक धर्मों पर समान रूप से लागू होती है।

मज़ेदार बात यह है कि अक्सर धार्मिक लोग दूसरों के धर्मग्रंथों में कमियाँ आसानी से देख लेते हैं, लेकिन अपने ही धर्मग्रन्थों को तर्क-विवेक और प्रश्नों की नज़र से देखने का साहस नहीं जुटा पाते।

जबकि यही समझ व्यक्ति और समाज की सोच को अधिक तार्किक, अधिक जागरूक और अधिक रचनात्मक बनाती है।

आस्था को बचाने के लिए यदि सवालों को दबाना पड़े, तो समझ लीजिए—समस्या सवालों में नहीं, आस्था में है।

गंगा-जमुनी संस्कृति से केवल उत्तर भारत की संस्कृति का बोध होता है, दक्षिण भारत की सांस्कृतिक एकता का नहीं, जब कि संगम-संस्कृति से पूरे देश की संस्कृति की एकता जाहिर होती है।

मज़े मज़े में :

कुत्ते

पतरस बुखारी
उर्दू से अनुवाद : मुशर्रफ अली

कुत्ते

मैंने जानवरों के विद्वानों से पूछा, जंगली जानवरों से जानकारी मांगी, खुद दिमाग खपाया, लेकिन कभी समझ नहीं आया कि आखिर कुत्तों का फायदा क्या है? गाय को देखिए, दूध देती है; बकरी को देखिए, दूध देती है और बच्चे भी। ये कुत्ते क्या करते हैं? लोग कहते हैं, "कुत्ता वफादार जानवर है।" अब जनाब, अगर वफादारी का मतलब यह है कि शाम सात बजे से भौंकना शुरू किया और बिना रुके सुबह छह बजे तक भौंकते रहे, तो हम लुच्चे ही भले। कल ही की बात है, रात के ग्यारह बजे एक कुत्ते को थोड़ी गुदगुदी हुई तो उसने सड़क पर आकर तबर्रा का एक मिसरा सुना दिया[1]। एक-दो मिनट बाद सामने के बंगले से एक कुत्ते ने मतला[2] पढ़ दिया। फिर एक पुराना उस्ताद कुत्ता गुस्से में आया, हलवाई के चूल्हे से लपककर बाहर आया और पूरी गजल मकता[3] तक सुना डाली। इस पर उत्तर-पूर्व की तरफ से एक कद्रदां कुत्ता जोर-जोर से दाद देने लगा। अब तो हजरत, वह मुशायरा इतना गर्म हुआ कि पूछिए मत। कमबख्त कुछ तो दो गजलें, तीन गजलें लिख लाए। कईयों ने तत्काल कसीदे के कसीदे पढ़ डाले। वह हंगामा इतना गर्म हुआ कि ठंडा होने का नाम ही नहीं लेता था। हमने खिड़की से हजार बार "आर्डर-आर्डर" चिल्लाया, लेकिन ऐसे मौकों पर कोई प्रधान की भी नहीं सुनता। अब कोई उनसे पूछे कि मियाँ, अगर इतना जरूरी मुशायरा करना था तो नदी के किनारे खुली हवा में जाकर तबा-आजमाई करते, घरों के बीच में आकर सोने वालों को सताना कौन सी शराफत है?

और फिर हमारे देसी कुत्ते भी कुछ अजीब बदतमीज हैं। अक्सर ये इतने देशभक्त होते हैं कि पतलून-कोट देखकर भौंकने लगते हैं। खैर, यह तो एक हद तक काबिल-ए-तारीफ भी है। इस बात को छोड़ दीजिए, इसके अलावा एक और बात है। हमें कई बार डालियाँ लेकर साहबों के बंगलों पर जाना पड़ा। खुदा की कसम, उनके कुत्तों में ऐसी शालीनता देखी कि हम शरमाकर लौट आए। जैसे ही हम बंगले में दाखिल हुए, कुत्ते ने बरामदे में खड़े-खड़े हल्की सी "भौं" की और फिर मुंह बंद करके खड़ा हो गया। हम आगे बढ़े तो उसने चार कदम आगे बढ़कर नाजुक और साफ आवाज में फिर "भौं" किया। चौकीदारी की चौकीदारी, संगीत का संगीत। हमारे कुत्ते? न राग, न सुर, न सर, न पैर। तान पर तान लगाते हैं, बेताले कहीं के। न मौका देखते हैं, न वक्त पहचानते। बस गले की बाजी लगाए जाते हैं। घमंड इस बात का कि तानसेन इसी मुल्क में पैदा हुआ था।

यह सच है कि हमारे रिश्ते कुत्तों से कुछ तनावपूर्ण ही रहे हैं, लेकिन कसम खा लीजिए, हमने कभी ऐसे मौके पर सत्याग्रह से मुंह नहीं मोड़ा। शायद आप इसे तसल्ली समझें, लेकिन खुदा गवाह है, आज तक किसी कुत्ते पर हाथ नहीं उठाया। दोस्तों ने सलाह दी कि रात में लाठी-छड़ी जरूर रखो, यह मुसीबतों से बचाव है। लेकिन हम किसी से बेवजह दुश्मनी नहीं चाहते। हालांकि, कुत्ते के भौंकते ही हमारी स्वाभाविक शराफत इतनी हावी हो जाती है कि अगर आप हमें उस वक्त देखें तो यकीनन समझेंगे कि हम डरपोक हैं। शायद आप यह भी अंदाजा लगाएँ कि हमारा गला सूख जाता है। यह बात सही है। ऐसे मौके पर अगर गाने की कोशिश करूं तो खरज के सुरों के सिवा कुछ नहीं निकलता। अगर आपकी भी वैसी ही तबीयत हो तो आप देखेंगे कि ऐसे मौके पर आयतुलकुर्सी[4] दिमाग से उतर जाती है। उसकी जगह शायद आप दुआ-ए-कुनूत[5] पढ़ने लगें।

कभी-कभी ऐसा भी हुआ कि रात दो बजे छड़ी घुमाते हुए थिएटर से लौट रहे हैं, और नाटक के किसी गीत की धुन दिमाग में बिठाने की कोशिश कर रहे हैं। चूंकि गीत के बोल याद नहीं और नौसिखिया होने का आलम है, इसलिए सीटी पर काम चला रहे हैं। अगर बेसुरे भी हो गए तो कोई समझेगा कि अंग्रेजी संगीत है। इतने में एक मोड़ पर मुड़े तो सामने एक बकरी बंधी थी। जरा कल्पना कीजिए। आँखों ने उसे भी कुत्ता समझ लिया। एक तो कुत्ता, और फिर बकरी जितना बड़ा। यानी बहुत ही कुत्ता। बस, हाथ-पांव फूल गए। छड़ी की घूमती गति धीमी होकर हवा में कहीं रुक गई। सीटी का संगीत भी कांपकर खामोश हो गया। लेकिन क्या मजाल कि हमारी थूथन की शक्ल में जरा भी फर्क आया हो। गोया एक बिना आवाज की लय अभी भी निकल रही थी। तबीयत का मसला है कि ऐसे मौकों पर अगर सर्दी में भी पसीना आ जाए तो कोई आश्चर्य नहीं, बाद में वह सूख जाता है।

चूंकि हम स्वभाव से थोड़े सावधान हैं, इसलिए आज तक कुत्ते के काटने का मौका नहीं आया। यानी किसी कुत्ते ने हमें कभी नहीं काटा। अगर ऐसा हादसा हुआ होता तो इस कहानी की जगह आज मेरा मर्सिया छप रहा होता। इतिहास में दुआई मिसरा होता कि "इस कुत्ते की मिट्टी से भी कुत्ता घास पैदा हो।" लेकिन, कहूँ किससे मैं कि क्या है, सग-ए-रह[6] बुरी बला है मुझे क्या बुरा था मरना, अगर एक बार होता।

जब तक इस दुनिया में कुत्ते मौजूद हैं और भौंकने पर आमादा हैं, समझ लीजिए कि हम कब्र में पांव लटकाए बैठे हैं। फिर इन कुत्तों के भौंकने के तौर-तरीके भी कुछ अनोखे हैं। एक तो यह संक्रामक बीमारी है, और बच्चों से लेकर बूढ़ों तक, सबको लगी है। अगर कोई भारी-भरकम असफंदयार कुत्ता अपने रौब और दबदबे को कायम रखने के लिए कभी-कभी भौंक ले, तो हम भी मजबूरी में कह दें कि

भई, भौंक। (हालांकि ऐसे वक्त में उसे जंजीर से बंधा होना चाहिए।) लेकिन ये कमबख्त दो दिन, तीन दिन, दो-तीन तोले के पिल्ले भी भौंकने से बाज नहीं आते। बारीक आवाज, छोटा सा फेफड़ा, फिर भी इतना जोर लगाकर भौंकते हैं कि आवाज की कंपन दुम तक पहुँचती है। और फिर चलती मोटर के सामने आकर भौंकते हैं, गोया उसे रोक ही लेंगे। अब अगर यह खाकसार मोटर चला रहा हो तो यकीनन हाथ काम करना बंद कर देंगे। लेकिन हर कोई उनकी जान बख्शी थोड़े ही करेगा?

कुत्तों के भौंकने पर मेरा सबसे बड़ा ऐतराज यह है कि उनकी आवाज सोचने की सारी शक्तियों को निष्क्रिय कर देती है। खासकर जब किसी दुकान के तख्ते के नीचे से उनका पूरा गुप्त जलसा सड़क पर आकर प्रचार शुरू कर दे, तो आप ही बताइए, होश ठिकाने रह सकते हैं? हर एक की तरफ बारी-बारी ध्यान देना पड़ता है। कुछ उनका शोर, कुछ हमारी विरोध की आवाज (होंठों के नीचे), बेढंगी हरकतें और चुप्पी (हर्कतें उनकी, चुप्पी हमारी)। इस हंगामे में दिमाग भला कैसे काम करेगा? हालांकि मुझे भी नहीं पता कि अगर ऐसे मौके पर दिमाग काम करे भी तो क्या तीर मार लेगा? बहरहाल, कुत्तों की यह घोर नाइंसाफी मेरे लिए हमेशा निंदनीय रही है। अगर उनका कोई प्रतिनिधि शराफत से आकर कह दे कि जनाब, सड़क बंद है, तो खुदा की कसम, हम बिना चूं-चरा किए लौट जाएँ। यह कोई नई बात नहीं। हमने कुत्तों की मांग पर कई रातें सड़कें नापने में गुजार दी हैं। लेकिन पूरी सभा का इस तरह एकजुट होकर सीना जोरी करना एक नीच हरकत है। (पाठकों से गुजारिश है कि अगर इनका कोई प्रिय कुत्ता कमरे में मौजूद हो तो यह लेख जोर से न पढ़ा जाए। मुझे किसी का दिल दुखाना मकसद नहीं।)

खुदा ने हर कौम में नेक लोग भी पैद किए हैं। कुत्ते इस नियम से अलग नहीं। आपने खुदातरस कुत्ता जरूर देखा होगा। आमतौर पर उसके शरीर पर तपस्या के निशान दिखते हैं। जब चलता है तो ऐसी मासूमियत और इज्जत से कि गुनाह का एहसास आँखें नहीं उठाने देता। दुम अक्सर पेट से सटी होती है। सड़क के बीच में गहरे विचार के लिए लेट जाता है और आँखें बंद कर लेता है। शक्ल बिल्कुल दार्शनिकों जैसी और वंशावली दीवान जॉन्स कलबी से मिलती है। किसी गाड़ी वाले ने लगातार हॉर्न बजाया, गाड़ी के अलग-अलग हिस्सों को खटखटाया, लोगों से कहलवाया, खुद दस-बारह बार आवाज दी, तो उसने जमीन पर सिर रखे-रखे ही लाल मखमूरी 7 आँखें खोलीं। हालात को एक नजर देखा और फिर आँखें बंद कर लीं। किसी ने चाबुक मारा तो वह इत्मिनान से वहाँ से उठकर एक गज दूर जाकर लेट गया और जहाँ विचार टूटे थे, वहीं से फिर शुरू कर दिए। किसी साइकिल वाले ने घंटी बजाई तो लेटे-लेटे ही समझ गया कि साइकिल है। ऐसी तुच्छ चीजों के लिए रास्ता छोड़ना वह फकीरी की शान के खिलाफ समझता है।

रात के वक्त यही कुत्ता अपनी सूखी, पतली दुम को यथासंभव सड़क पर फैलाकर रखता है। इससे सिर्फ खुदा के चुने हुए बंदों की आजमाइश होती है। जहाँ गलती से आपने उस पर पांव रख दिया, उसने गुस्से और नाराजगी के लहजे में आपसे सवाल शुरू कर दिए। "बच्चा, फकीरों को छेड़ता है। दिखता नहीं, हम साधु लोग यहाँ बैठे हैं?" बस, उस फकीर की बददुआ से उसी वक्त कंपकंपी शुरू हो जाती है। बाद में कई रातों तक यही ख्वाब दिखते हैं कि अनगिनत कुत्ते टांगों से लिपटे हैं और जाने नहीं दे रहे। आँख खुलती है तो पांव चारपाई की रस्सी में फंसे होते हैं।

अगर खुदा मुझे कुछ समय के लिए उम्दा किस्म का भौंकने और काटने की ताकत दे दे, तो बदले का जुनून मेरे पास काफी है। धीरे-धीरे सारे कुत्ते इलाज के लिए कसौली पहुँच जाएँ। एक शेर है:

उर्फी, तू मत डर रकीबों की चीखों से कुत्तों की आवाज भिखारी के रिज्क को कम नहीं करती।

यही वह प्रकृति के खिलाफ शायरी है जो एशिया के लिए शर्मिंदगी का सबब है। अंग्रेजी में कहावत है, "भौंकने वाला कुत्ता काटता नहीं।" यह ठीक है, लेकिन कौन जानता है कि भौंकने वाला कुत्ता कब भौंकना बंद करके काटना शुरू कर दे?

संदर्भ@अर्थ

1. बुरा-भला कहने वाली ग़ज़ल के शेर की पहली पंक्ति
2. ग़ज़ल के शेर की दूसरी पंक्ति
3. ग़ज़ल का अंतिम शेर
4. क़ुरान की एक मशहूर आयत
5. क़ुरान की एक और मशहूर आयत
6. मील का पत्थर
7. नशीली

बधाई

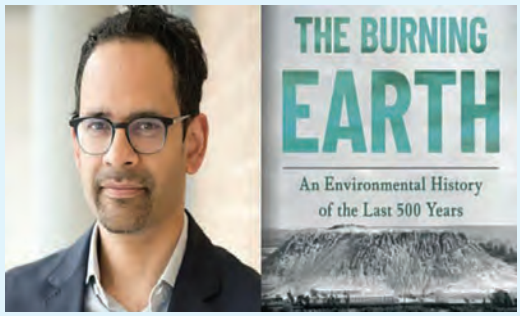

भारतीय मूल के इतिहासकार सुनील अमृत को उनकी किताब 'द बर्निंग अर्थः एन एनवायर्नमेंटल हिस्ट्री ऑफ द लास्ट 500 इयर्स' के लिए ब्रिटिश अकादमी पुस्तक पुरस्कार का विजेता घोषित किया गया है। इस पुरस्कार के तहत विजेता को 25,000 पाउंड की रकम मिलती है, जो दुनिया की सर्वश्रेष्ठ गैर-काल्पनिक कृतियों को दिया जाता है।

भारतीय महिला टीम ने हरमनप्रीत कौर की कप्तानी में विश्व कप जीता, बधाई!

स्मरण

विनोद कुमार शुक्ल

(दीवार से देह निकल गई, शब्दों की खिड़की से रोशनी आती रहेगी)

प्रियदर्शन

सुलझे हुए साहित्यकार, पत्रकार और विचारक

'वह आदमी चला गया नया गरम कोट पहन कर विचार की तरह'– 1981 में आए अपने इस कविता संग्रह को जब विनोद कुमार शुक्ल ने यह नाम दिया होगा तब उन्हें खयाल नहीं होगा कि क़रीब पांच दशक बाद दिसंबर की एक शाम वे एक विचार की तरह ही चल देंगे। बीते कई दिनों से उनकी देह क्लांत थी, उनके लिए सांस लेना मुश्किल हो रहा था, अंततः वे चल ही दिए– पीछे छूट गई वह संवेदना जो उनकी पूरी रचनाशीलता का मूल तत्व थी और जिसे व्यक्त करने के बिल्कुल अनूठे तरीक़े उन्होंने विकसित किए थे।

विनोद कुमार शुक्ल लिख और छप तो सातवें दशक से रहे थे और अपनी सहज प्रयोगशीलता के साथ रचनाकर्म को बरत रहे थे, लेकिन कीर्ति संभवतः उन्हें कुछ देर से मिली। वैसे अपने पहले ही संग्रह 'लगभग जयहिंद' के साथ उन्होंने हिंदी संसार का ध्यान अपनी ओर खींचा। आने वाले वर्षों में उनके कविता संग्रह– 'वह आदमी चला गया नया गरम कोट पहन कर विचार की तरह', 'सबकुछ होना बचा रहेगा', 'अतिरिक्त नहीं', 'कविता से बड़ी कविताएँ' जैसे कई संग्रह आते चले गए और एक अलग से ऐसे कवि के रूप में उनकी ख्याति बड़ी होती चली गई है जो शब्दों में नई सांस भर देता है, जो करुणा को बिल्कुल पारदर्शी बना देता है, जिसकी चुप्पी भी बोलती है और जिसके बोलने में भी ख़ामोशी अपना एक घर बना लेती है।

1979 में जब 'नौकर की कमीज़' छप कर आया तो सबने पाया कि यह बहुत मामूली से मध्यवर्गीय जीवन की कहानी है जिसमें कहानीपन बहुत कम है। इस उपन्यास में भी कविता ही थी– घर से निकलने का सुख इसलिए था कि लौटने के लिए एक घर था। बहुत छोटे-छोटे काम–पान खाना, सब्ज़ी लाना, पानी भरना, बाल्टी रखना, दोस्त से बात करना, दाढ़ी बनाना, सिनेमा देखना, पत्नी को कपड़े बदलते देखना– यह सब इतनी सहजता और इतने जादुई ढंग से उपन्यास में खुलता जाता था कि जीवन का मामूलीपन भी दमकने लगता था– इंसान होने की पहचान के साथ। और इसी दमक के साथ वे मजबूरियाँ भी खुलती जाती थीं जो मध्यवर्गीय जीवन में डॉक्टर से इलाज कराने को भी स्थगित करती चलती हैं, जिनमें अपने दफ़्तर के वरिष्ठ अधिकारी के सामने व्यक्ति बेबस-लाचार मुद्रा अख्तियार किए रहता है जो उसका स्वभाव बन जाता है। इस उपन्यास की ख़ूबी क्या थी? बहुत सारे लोग इस यथार्थ के बीच जीते हैं, लेकिन वे इसे ठीक से महसूस नहीं कर पाते। जबकि विनोद कुमार शुक्ल के संतू बाबू इस यथार्थ को बहुत मार्मिकता से अनुभव और अभिव्यक्त भी करते हैं। यही वजह है कि कोई एकरैखिक कथासूत्र न होने के बावजूद, लगभग भाव-जगत की सीढ़ियों पर देर तक और दूर तक टहलते-टहलते एक अंत तक पहुंचने के बाद भी पाठक अपने-आप को इससे बंधा पाता है।

साल 2000 में आया उनका एक और उपन्यास 'दीवार में एक खिड़की रहती थी'– उनके औपन्यासिक संसार के जाने-पहचाने मामूलीपन को एक अलग आयाम देता हुआ आया। यहाँ स्कूल में पढ़ाने वाले रघुबर दास हैं जो अपनी पत्नी सोनसी के साथ जब अपनी कल्पना में खिड़की के पार उतर जाते हैं तो एक जादुई, मनोरम और सम्मोहक दुनिया उनके आगे बिछ जाती है। यहाँ भी जीवन अपनी निपट सरलता के साथ प्रगट होता है– दैनंदिन ब्योरों में, तरह-तरह के संकटों में, उनको दूर करने वाले उपायों में और उन कल्पनाओं में जो जीवन को अचानक सहनीय और सरस बना डालती हैं।

इस पूरे दौरान उनकी कविताएं– जो शायद उनकी रचनाशीलता का मूल स्रोत रहीं और उनके उपन्यासों में भी प्रगट होती रहीं– उनको अलग कीर्ति दिलाने वाली साबित हुईं। उनकी कुछ कविताएं तो बिल्कुल उद्धरणों की तरह इस्तेमाल की जाने लगी हैं। मसलन 'अतिरिक्त नहीं' संग्रह की यह पहली कविता– 'हताशा में एक व्यक्ति बैठ गया था / व्यक्ति को मैं नहीं जानता था / हताशा को जानता था / इसलिए मैं उस व्यक्ति के पास गया / मैंने हाथ बढ़ाया / मेरा हाथ पकड़ कर वह उठ खड़ा हुआ / वह मुझे नहीं जानता था / मेरे हाथ बढ़ाने को जानता था / हम दोनों साथ चले / दोनों एक-दूसरे को नहीं जानते थे / साथ चलने को जानते थे।'

विनोद कुमार शुक्ल दरअसल अपनी कविता में दो काम ख़ास तौर पर करते रहे। वे दिए गए शब्दों में छुपे अधिकतम अर्थों को संभव करते रहे। वे जैसे शब्दों की आत्मा के सूखे कुएं में झांक कर बिल्कुल तल में बसे दुख को निकाल लाते थे। दूसरा काम वे काल और कालातीत को जोड़ने का करते थे। वे एक क्षण को पकड़ते थे और उसे बिल्कुल शाश्वत बना डालते थे।

बहरहाल, अब हमारी अपेक्षाओं के पार जा चुके हैं, उनके शब्द हमारे बीच हैं जो हमें संवेदनशील बनाते हैं। उनकी कृतियाँ हिंदी के समृद्ध संसार को कुछ और समृद्ध करती हैं। उनका न होना हमें खलेगा, लेकिन उनकी कृतियां उन्हें हमारे बीच जीवित रखेंगी।

चार लघु कथाएँ

सहादत हसन मंटो

(अपने समय के ही नहीं आल टाइम ग्रेट)

1. करामात

लूटा हुआ माल बरामद करने के लिए पुलिस ने छापे मारने शुरू किए। लोग डर के मारे लूटा हुआ माल रात के अंधेरे में बाहर फेंकने लगे, कुछ ऐसे भी थे जिन्होंने अपना माल भी मौक़ा पाकर अपने से अलहदा कर दिया, ताकि क़ानूनी गिरफ़्त से बचे रहें। एक आदमी को बहुत दिक़्क़त पेश आई। उसके पास शक्कर की दो बोरियाँ थी जो उसने पंसारी की दूकान से लूटी थीं। एक तो वह जूँ-तूँ रात के अंधेरे में पास वाले कुएँ में फेंक आया, लेकिन जब दूसरी उसमें डालने लगा ख़ुद भी साथ चला गया। शोर सुनकर लोग इकट्ठे हो गये। कुएँ में रस्सियाँ डाली गईं। जवान नीचे उतरे और उस आदमी को बाहर निकाल लिया गया। लेकिन वह चंद घंटो के बाद मर गया। दूसरे दिन जब लोगों ने इस्तेमाल के लिए उस कुएँ में से पानी निकाला तो वह मीठा था। उसी रात उस आदमी की क़ब्र पर दीए जल रहे थे।

2. खबरदार

बलवाई मालिक मकान को बड़ी मुश्किलों से घसीटकर बाहर लाए। कपड़े झाड़कर वह उठ खड़ा हुआ और बलवाइयों से कहने लगा : "तुम मुझे मार डालो, लेकिन ख़बरदार, जो मेरे रुपए-पैसे को हाथ लगाया.....!"

3. हलाल और झटका

"मैंने उसकी शहरग पर छुरी रखी, हौले-हौले फेरी और उसको हलाल कर दिया।" "यह तुमने क्या किया?" "क्यों?" "इसको हलाल क्यों किया?" "मज़ा आता है इस तरह।" "मज़ा आता है के बच्चे.....तुझे झटका करना चाहिए था....इस तरह। " और हलाल करनेवाले की गर्दन का झटका हो गया।

(शहरग– शरीर की सबसे बड़ी शिरा जो हृदय में मिलती है)

4. सफ़ाई पसंदी

गाड़ी रुकी हुई थी।

तीन बंदूकची रेल के एक डिब्बे के पास आये।

खिड़की में से भीतर झांककर उन्होंने डिब्बे में बैठे मुसाफिरों से पूछा– क्यों भइए, कोई मुर्गा है?

एक मुसाफ़िर कुछ कहते-कहते रुक गया।

बाक़ी लोगों ने कहा–जी नहीं।

थोड़ी देर के बाद भाले लिए हुए चार आदमी आए।

खिड़की में से भीतर झाँककर उन्होंने डिब्बे में बैठे मुसाफिरों से पूछा–क्यों जनाब, कोई मुर्गा-वुर्गा है?

उस मुसाफिर ने, जो पहले कुछ कहते-कहते रुक गया था, जवाब दिया–जी, मालूम नहीं... आप अंदर आकर संडास में देख लीजिए। भाले वाले अंदर दाख़िल हुए। उन्होंने संडास का अंदर से बंद दरवाज़ा तोड़ दिया, तो उसमें से एक मुर्गा निकल आया। एक भाले वाला बोला–कर दो हलाल. दूसरे ने कहा–नहीं...नहीं... यहां नहीं. डिब्बा गंदा हो जायेगा... इसे बाहर ले चलो। ●

वे दिन : वे लोग

राष्ट्रीय राजमार्ग संख्या 11 (जयपुर-बीकानेर) पर एक बीघा में निर्मित एक शानदार भवन है राष्ट्रभाषा हिन्दी प्रचार समिति श्री डूँगरगढ़ का लेकिन यह कोई एक दिन का चमत्कार नहीं है। 1961 में श्याम महर्षि जैसे उत्साही टीनएजर ने पंडित मुखराम सिखवाल और इन्द्र चंद्र बिन्नानी जैसे संवेदनशील सज्जनों के प्रोत्साहन से 1 जनवरी 1961 को राष्ट्रभाषा हिन्दी प्रचार समिति, श्री डूँगरगढ़ का शुभारंभ किया जो आज प्रकाशन, साहित्य के लिए सम्मान, पुरस्कार और एक विशाल पुस्तकालय के लिए क्षेत्र में समादृत है।

बात 1992 के हिन्दी दिवस 14 सितंबर की है और अवसर था महापंडित राहुल सांकृत्यायन का जन्म शताब्दी वर्ष। श्याम महर्षि ने अपने साथियों के साथ इस अवसर पर आमंत्रित किया वरिष्ठ लेखक विष्णु प्रभाकर को।

प्रभाकर जी रेल मार्ग से पधारे और युवाओं के उत्साह से बहुत प्रभावित हुए। जाते समय युवाओं ने प्रभाकर जी को दो सौ रुपए भेंट किए। प्रभाकर जी ने ना-नुकर की तो युवकों ने इसे कम समझकर तीन सौ कर दिए। प्रभाकर जी ने कुछ नहीं कहा।

दिल्ली पहुँचकर उन्होंने दो सौ रुपए अपनी तरफ से मिलाकर पाँच सौ रुपए का मनीआर्डर श्याम महर्षि को भेजा इस उल्लेख के साथ कि मैं आप लोगों के उत्साह और स्वागत से बहुत प्रभावित हुआ। उस समय आप मेरी बात नहीं समझ सके। इस राशि को आप संस्था के लिए मेरी भेंट तथा आप और श्री डूँगरगढ़ के लोगों के स्नेह का सम्मान मानकर स्वीकार करें। ●

नोबल 2025

भौतिकी का नोबेल पुरस्कार 2025

मिशेल डेवर्ट

जॉन मर्टिन्स

जॉन क्लार्क

कैलिफोर्निया यूनिवर्सिटी, बर्कले के जॉन क्लार्क, येल यूनिवर्सिटी और कैलिफोर्निया विश्वविद्यालय, सांता बारबरा के मिशेल एच. डेवोरेट और कैलिफोर्निया विश्वविद्यालय, सांता बारबरा के जॉन एम. मार्टिनिस को प्रदान किया जाएगा।

केमिस्ट्री का नोबेल पुरस्कार 2025

साल 2025 के लिए रॉयल स्वीडिश एकेडमी ऑफ साइंसेज ने सुसुमु कितागावा, रिचर्ड रॉबसन और उमर यागी को रसायन विज्ञान का नोबेल पुरस्कार घोषित किया गया।

साहित्य का नोबेल पुरस्कार 2025

हंगेरियन उपन्यासकार लास्ज़लो क्रास्ज़्नाहोरकाई को

"उनके सम्मोहक और दूरदर्शी कार्य के लिए, जो सर्वनाशकारी आतंक के बीच, कला की शक्ति की पुष्टि करता है।"

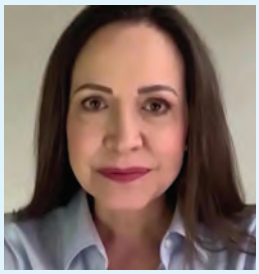

मारिया कोरिना मचाडो वेनेजुएला के लोकतंत्र आंदोलन की नेता हैं और लैटिन अमेरिका में हाल के समय की सबसे असाधारण नागरिक साहस की मिसाल हैं। वह लोकतंत्र की लौ को बढ़ते अंधेरे में जलाए रखती हैं।

अर्थशास्त्र का नोबेल पुरस्कार 2025

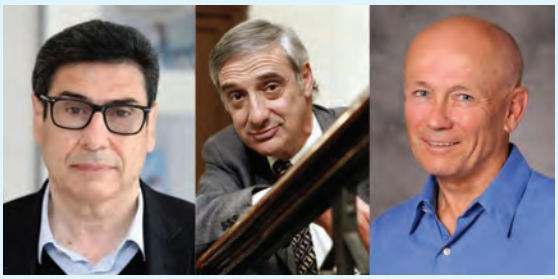

इस साल के अर्थशास्त्र के नोबेल पुरस्कार के लिए जोएल मोकिर, फिलिप अघियन और पीटर होविट को चुना गया है।

चिकित्साशास्त्र का नोबेल पुरस्कार 2025

मैरी ई. ब्रंकॉ
(इंस्टीट्यूट फॉर सिस्टम्स बायोलॉजी, सिएटल, अमेरिका)

फ्रेड राम्सडेल
(सोनोमा बायोथेरेप्यूटिक्स, सैन फ्रांसिस्को, अमेरिका)

शिमोन साकागुची
(ओसाका यूनिवर्सिटी, जापान)

प्रेरक

घोर साम्प्रदायिक माहौल के इस दौर में पंजाब के एक गांव से सांप्रदायिक सद्भाव की दिल छू लेने वाली कहानी सामने आई है। फतेहगढ़ साहिब जिले के जखवाली गांव में 75 वर्षीय सिख महिला बीबी राजिंदर कौर ने मस्जिद निर्माण के लिए अपनी जमीन दान कर दी है, जबकि गांव के सिख और हिंदू परिवारों ने आर्थिक सहायता प्रदान की है।

इस अंक का मुखपृष्ठ

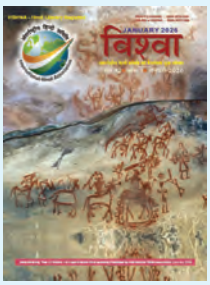

भीमबेटका के आदिमानव आश्रय स्थलों के चित्र दक्षिण एशिया की सबसे प्राचीन कलाकृतियों में से हैं, जो मध्य प्रदेश के रायसेन जिले में स्थित हैं और प्रागैतिहासिक काल (पुरापाषाण से मध्यपाषाण) के मानव जीवन, शिकार, नृत्य और दैनिक गतिविधियों को दर्शाते हैं, जिनमें हरे, लाल, सफेद रंगों में पशु-मानव आकृतियाँ, हाथियों की सवारी, शहद इकट्ठा करना, और पौराणिक दृश्य मिलते हैं, जो लगभग 30,000 साल पुराने माने जाते हैं।

अमरवाणी

मैथिलीशरण गुप्त

मनुष्यता

विचार लो कि मर्त्य हो न मृत्यु से डरो कभी,
मरो परंतु यों मरो कि याद जो करें सभी।

हुई न यों सुमृत्यु तो वृथा मरे, वृथा जिए,
मरा नहीं वही कि जो जिया न आपके लिए।

वही पशु-प्रवृत्ति है कि आप आप ही चरे,
वही मनुष्य है कि जो मनुष्य के लिए मरे॥

उसी उदार की कथा सरस्वती बखानती,
उसी उदार से धरा कृतार्थ भाव मानती।

उसी उदार की सदा सजीव कीर्ति कूजती;
तथा उसी उदार को समस्त सृष्टि पूजती।

अखंड आत्म भाव जो असीम विश्व में भरे,
वही मनुष्य है कि जो मनुष्य के लिए मरे॥

क्षुधार्त रतिदेव ने दिया करस्थ थाल भी,
तथा दधीचि ने दिया परार्थ अस्थिजाल भी।

उशीनर क्षितीश ने स्वमांस दान भी किया,
सहर्ष वीर कर्ण ने शरीर-चर्म भी दिया।

अनित्य देह के लिए अनादि जीव क्या डरे?
वही मनुष्य है कि जो मनुष्य के लिए मरे॥

सहानुभूति चाहिए, महाविभूति है यही;
वशीकृता सदैव है बनी हुई स्वयं मही।

विरुद्धवाद बुद्ध का दया-प्रवाह में बहा,
विनीत लोकवर्ग क्या न सामने झुका रहा?

अहा! वही उदार है परोपकार जो करे,
वही मनुष्य है कि जो मनुष्य के लिए मरे॥

रहो न भूले के कभी मदांध तुच्छ वित्त में,
सनाथ जान आपको करो न गर्व चित्त में।

अनाथ कौन है यहाँ? त्रिलोकनाथ साथ हैं,
दयालु दीनबंधु के बड़े विशाल हाथ हैं।

अतीव भाग्यहीन है अधीर भाव जो करे,
वही मनुष्य है कि जो मनुष्य के लिए मरे॥

अनंत अंतरिक्ष में अनंत देव हैं खड़े,
समक्ष ही स्वबाहु जो बढ़ा रहे बड़े-बड़े।

परस्परावलंब से उठो तथा बढ़ो सभी,
रहो न यों कि एक से न काम और का सरे,

वही मनुष्य है कि जो मनुष्य के लिए मरे॥
'मनुष्य मात्र बंधु है' यही बड़ा विवेक है,

पुराणपुरुष स्वयंभू पिता प्रसिद्ध एक है।
फलानुसार कर्म के अवश्य बाह्य भेद है,

परंतु अंतरैक्य में प्रणामभूत वेद हैं।
अनर्थ है कि बंधु ही न बंधु की व्यथा हरे,

वही मनुष्य है कि जो मनुष्य के लिए मरे॥
चलो अभीष्ट मार्ग में सहर्ष खेलते हुए,

विपत्ति, विघ्न जो पड़े उन्हें ढकेलते हुए।
घटे न हेलमेल हाँ, बढ़े न भिन्नता कभी,

अतर्क एक पंथ के सतर्क पंथ हों सभी।
तभी समर्थ भाव है कि तारता हुआ तरे,

वही मनुष्य है कि जो मनुष्य के लिए मरे॥

हम्फ्रीगंज, पोर्ट ब्लेयर स्थित शहीद-स्मारक जहाँ 30 जनवरी 1944 को जापानी सेना ने जासूसी के झूठे आरोप में 44 लोगों को गोली मारकर दफना दिया था।